7/75

सोमसी

वर्ष 1

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी

अंक 3

tharahkardu.in

सोमसी

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी का त्रैमासिक मुख-पत्र

वर्ष 1 जुलाई, 1975 अंक 3

प्रबन्ध-सम्पादक
एच० सी० पराशर

सम्पादक
डा० बंशी राम शर्मा

परामर्श-मण्डल

1. आचार्य दिवाकर दत्त शर्मा
2. श्री खेम राज गुप्त
3. श्री हरि राम जसटा
4. श्री मौलू राम ठाकुर

सहयोगी
सरोज शर्मा

आवरण
ओम प्रकाश

प्राप्ति-स्थान—

हिमाचल कला–संस्कृति–भाषा अकादमी, परिमहल,
शिमला-171009

सोमसी

वर्ष 1 अंक 3

जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्तूबर में प्रकाश्य ।

लेखकों के विचारों तथा दिये गए तथ्यों से सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं ।

प्रकाशित रचनाओं को पूर्ण अथवा आंशिक रूप में उद्धृत करने के लिये सचिव, हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी, परिमहल, शिमला-9 की अनुमति अनिवार्य है ।

वार्षिक चन्दा–१२ रुपये
इस अंक का मूल्य–३ रुपये

अनुक्रमणिका

		पृष्ठ
1. सम्पादकीय		
2. हिमाचल-संस्कृति एवम् आयुर्वेद —लाल चन्द प्रार्थी	..	1
3. बिलासपुरी जन-जीवन में विशिष्ट अर्थ वाले शब्दों का अध्ययन —मनसाराम शर्मा 'अरुण'	..	5
4. कांगड़ी लोक-साहित्य : एक अध्ययन —डा0 आत्माराम	..	15
5. प्वाड़ा झांखों अजबा —विद्यानन्द सरैक		24
6. बरलाज —केशव आनन्द	..	3
7. उन्नीसवीं शती की रंगकला का एक पृष्ठ : कसवाई मण्डबे —हरिचन्द पराशर	..	4
8. सिरमौर का एक लोकनायक : होकू मियां —अमर सिंह चौहान	..	4
9. महासुई लोकगीतों में सामाजिक परिवेश —जगदीश शर्मा	..	5
10. वैष्णो देवी की यात्रा —दुर्गादत्त शास्त्री	..	6
11. विविधा–(i) जसमा ओडन–रंगमंच पर	..	7
(ii) विष्णु पुराण-गाथा क प्रतीक	..	7
12. हमारा सूक्ति-संसार	..	7
13. अकादमी की गतिविधियां	..	7
14. पहाड़ी भाषा पुस्तक-सूची	..	8
15. पश्चिमी पहाड़ी का परम्परागत क्षेत्र	..	8
16. अधिसूचना	..	8

सम्पादकीय

हमारी प्राचीन उक्ति है ' प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः' अर्थात् जो व्यक्ति लोक को स्वतः अपने चक्षुओं से देखता है वही उसे सम्यक् रूप से जान सकता है । प्रत्यक्ष दर्शन का माध्यम हमारे चक्षु तथा दार्शनिक अर्थ में ज्ञानेन्द्रियां हैं । नाटक भी 'लोक' को समझने के लिए महत्वपूर्ण आधार रहा है । वाणी का प्रयोग जहां भी हो, हमें दूसरे के विचारों तथा व्यक्तित्व को समझने में सहायता करता है । वेदों में अनेकों सम्वादात्मक ऋचायें आई हैं । ये ऋचायें नाटकीय सम्वादों का केवल मूल-रूप ही नहीं हैं बल्कि वैदिक काल से पूर्व प्रचलित सामाजिक मान्यताओं का दिग्दर्शन कराती हैं । सामवेद के गीत नाट्य-कथाओं के लिए अभूतपूर्व सामग्री प्रदान करते रहे हैं । मैक्समूलर ने भी ऋग्वैदिक ऋचाओं के अनेक सम्वादों को नाटकीय-सम्वाद माना है ।

लोक-नाट्यों में मनोरंजन के अतिरिक्त लोक-कल्याण की भावना निहित रहती है। संस्कृत भाषा के जन-समाज से दूर होते रहने के कारण लोक-नाट्यों का सम्बन्ध साधारण 'लोक' से कटता गया और लोक-नाट्यों का रूप गेय-कथाओं (गाथाओं) ने ले लिया। रामायण-महाभारत की अनेक कथा-लड़ियां इन नाट्यों का श्रुत-रूप बन कर प्रचलित हो गईं । ये कथायें लिखित रूप में परिमार्जित व परिष्कृत होती गईं और विशिष्ट साहित्य के रूप में सुरक्षित हुईं परन्तु लोक-नाट्य-परम्परा आंचलिक तथा दुर्गम क्षेत्रों में स्वांगों, पर्व तथा उत्सव गीतों, ऋतु-गीतों, रासों, प्वाड़ों, बारहमासों, उत्सव-प्रदर्शनों तथा खेल-तमाशों (जादुई-प्रभाव के अन्तर्गत अथवा मनोरंजन के लिए), करयाला तथा वाद्य-तालों में अपने आरम्भिक रूप में सुरक्षित रह सकी । यही कारण है कि नृत्य-गीत, ताल तथा उत्सव-प्रदर्शन हमारी नाट्य-धर्मी तथा लोक-धर्मी परम्पराओं को सुरक्षित रख सके हैं । यह निर्विवाद है कि लोक-नाट्य जन-जीवन का युक्तियुक्त प्रतिनिधित्व करता है और यह लोक-रंजन का आडम्बर-हीन साधन है ।

पर्वतीय संस्कृति के इस महत्वपूर्ण अंग के रक्षण, पोषण तथा सम्यक् अध्ययन की आवश्यकता वर्तमान युग में पहले से कहीं अधिक अनुभव की जा रही है क्योंकि आज जीवन के प्रत्येक पहलू पर परिवर्तन तथा पुराने मूल्यों के प्रति उदासीनता का वातावरण मण्डरा रहा है ।

—बंशी राम शर्मा

लेखकों से

—सोमसी में पर्वतीय कला-संस्कृति एवम् भाषा के क्षेत्र की सारगर्भित तथा शोधपूर्ण रचनाओं को प्रकाशनार्थ प्राथमिकता दी जाती है । पहाड़ी भाषा के उद्धरणों का भाव सरल हिन्दी में व्यक्त किया जाए तो रचना सुबोध तथा रोचक हो सकती है ।

—अन्यत्र प्रकाशित, पठित अथवा प्रसारित रचनाओं को यथावत प्रकाशनार्थ न भेजें तथा इस आशय का प्रमाणपत्र रचना के साथ अवश्य संलग्न करें । रचनाओं में उपरोक्त विषयों पर या तो मौलिक विचार हों अथवा पूर्व-प्रकाशित विषय पर नया दृष्टिकोण ।

—रचना कागज़ के एक ओर टंकित अथवा स्वच्छ रूप से लिखी होनी चाहिये ।

—अस्वीकृति की दशा में लेखक जिन रचनाओं को वापिस मंगाना चाहते हैं उनके लिए टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें ।

—स्वीकृत रचनाओं के लिये नियमानुसार पारिश्रमिक रचना के प्रकाशनोपरान्त यथा शीघ्र भेज दिया जाता है ।

—सम्पादक

हिमाचल-संस्कृति एवम् आयुर्वेद

—लाल चन्द प्रार्थी

जब भी 'हिमालय' शब्द का उच्चारण होता है तो लोगों के चेहरों पर जिज्ञासा तथा आशाओं की आभा दमक उठती है । दुर्गम ऊंचाइयां, अजेय चोटियों के आह्वान, अछूते ग्लेशियर, विस्तृत घाटियां, वनस्पति तथा औषधि-सम्पदा का अविश्वसनीय भण्डार, शाश्वत हिम, घने हरे जंगल , गाते-बहते झरने तथा सुरुचिपूर्ण आध्यात्मिक प्रभाव आदि सभी बातें अनादिकाल से विचारकों तथा साधकों को हिमालय के गरिमामय आकर्षण, देव-निवास तथा आध्यात्मिक-यात्राओं का सन्देश देते रहे हैं । पौराणिक विचारधारा के अनुसार हिमाचल प्रदेश पश्चिमी हिमालय का एक भू-भाग है ।

इतिहास के लिखित प्रमाणों से प्रतीत होता है कि इस ग्रह पर जीवन सर्वप्रथम सप्त-सिन्धु अर्थात् सात नदियों की भूमि, जिसमें आधुनिक पंजाब–हरयाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू–काश्मीर तथा उत्तर प्रदेश के कुछ भाग हैं, में आरम्भ हुआ । शतपथ ब्राह्मण के अनुसार 'जल प्लावन', जिसे अंग्रेज़ी साहित्य में 'ग्रेट डेल्यूज' अथवा महा- प्रलय, मुस्लिम साहित्य 'जिन्दा वस्ता' में 'तूफान ए नूह' कहा जाता है, के समय, महर्षि मनु सप्त-ऋषियों के साथ नाव पर हिमगिरि हिमालय के किसी भाग में पहुंचे। आधुनिक प्रसिद्ध हिन्दी कवि जयशंकर प्रसाद ने भी इस जल प्रलय अथवा महाप्रलय का संकेत अपने महाकाव्य कामायनी में किया है :—

हिम-गिरि के उत्तुंग शिखर पर बैठ शिला की शीतल छांह ।
एक पुरुष, भीगे नयनों से देख रहा था जल प्रवाह ॥

महर्षि मनु ने सप्त-ऋषियों के साथ इस भू-भाग में पहुंचने के उपरान्त मानव तथा मानवता की रचना, संरक्षण तथा आवश्यकताओं की पूर्ति का कार्य आरम्भ किया। इस प्रकार जल-प्लावन के पश्चात यह भू–भाग भविष्य की वनस्पति, वन्य-प्राणियों तथा मनुष्य जाति की उत्पत्ति का आधार बना। प्रलयान्त में भूमि का प्रकटाव आरम्भ हुआ तथा वनस्पति और जीवन के अन्य प्रकार दृष्टिगत होने लगे। आगे चल कर पानी के हट जाने पर सप्त-सिन्धु का विशाल भू–भाग सामने आया। शताब्दियां बीत जाने पर इस भू–भाग में उच्च जीवन का विकास-क्रम आरम्भ हुआ। सप्तसिन्धु इस प्रकार भावी सभ्यता का पालना बन गया।

सप्त-सिन्धु की भूमि बाद में आर्यवर्त के नाम से प्रसिद्ध हुई। विश्व प्रसिद्ध वेदों, उपनिषदों तथा हिन्दु पौराणिक-कथाओं का साहित्य इसी भू भाग में रचा गया। वेद संसार के समस्त भौतिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान के स्रोत हैं। इनका एक विशेष अंश जिसका सम्बन्ध जीवन-दर्शन, स्वास्थ्य एवं आनन्द, रोग तथा उपचार, शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास के साथ है, एक अलग विषय 'शरीर तथा आयु-विज्ञान' के रूप

में विकसित हुआ जो आयर्वेद कहलाया। चरक चिकित्सा संहिता (19/3) के अनुसार आयुर्वेद-वेत्ता ऋषियों का पहला महा-सम्मेलन हिमालय के ही किसी उत्कृष्ट स्थान पर होना सिद्ध होता है। प्राचीनकाल में आयुर्वेद के मनीषियों ने जंगलों में रह कर मानवता के हित के लिये अभूतपूर्व ग्रन्थों की रचना की। सप्तसिन्धु की भूमि ऊंचे पर्वत-शिखरों, घने वनों से लेकर मध्यवर्ती पहाड़ों व मैदानों से संयुक्त है। इस प्रकार इस भूभाग में जीवन की विविधता की पर्याप्त सम्भावनायें रहीं। एक ओर तो उन महान ऋषियों ने जो पर्वतीय भागों में बसे, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक विकास की दिशाओं में महत्वपूर्ण योगदान दिया तथा दूसरी ओर मैदानी भागों में बसने वालों ने शहरों की सभ्यता को अपना जीवन-धर्म बनाने में भूमिका निभाई।

चरक द्वारा रचित आयुर्वेद के महान ग्रन्थ में 'हिमवन औषध भूमिनम्' (च० सू० 25/40) का वर्णन है। आयुर्वेद-विज्ञान एक नई शाखा थी और इसमें रुचि रखने वाले महात्मा तथा विद्वान हिमालय के इस भू-भाग में, जिसे वर्तमान समय में हिमाचल प्रदेश कहा जाता है, बसे। प्राचीन साहित्य में इन तथ्यों का स्पष्ट दिग्दर्शन होता है। आयुर्वेद के एक प्रसिद्ध विद्वान तथा शोधकर्ता पुनर्वसु ऐतरेय के सम्बन्ध में वर्णित है कि वह चन्द्रभागा (वर्तमान लाहुल स्पीती की नदी) क्षेत्र में निवास करते थे। पुनर्वसु ऐतरेय से भी पूर्व कश्यप प्रजापति का पुत्र इन्द्र आयुर्वेद का महान व्यक्तित्व, जिसने अथर्ववेद में प्राप्त होने वाले आयुर्वेद सम्बन्धी सूत्रों की व्याख्या की तथा उनके ग्रथों को भृगु, अंगीरा, ऐतरेय, कश्यप, अगस्त्य, वामदेव, वशिष्ठ तथा गौत्तम व भारद्वाज आदि प्रसिद्ध ऋषियों को बताया, का इसी क्षेत्र से सम्बन्ध रहा है।

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि इन्द्र, जो हिमालय के बहुत बड़े भाग का अधिपति था, का निवास-स्थान 'इन्द्रासन' हिमाचल प्रदेश के कुल्लू घाटी के 'देओटिब्बा' के स्थान पर रहा है। 'कुलूत देश की कहानी' के अनुसार इन्द्र ने व्यास नदी के पर्वतीय क्षेत्र में 'शरण्यावत' स्थान पर सोम का पान किया जिसके कारण उसे 'वृत्र' असुर को मारने की शक्ति प्राप्त हुई।

कालान्तर में महर्षियों के आश्रम उनके शिष्यों के विद्यापीठ बन गए और इस प्रकार आयुर्वेद-विज्ञान की प्रारम्भिक शिक्षा के प्रशिक्षण-केन्द्र ऋषियों के यही आश्रम हो गए। विश्व के विभिन्न भागों के विद्यार्थी आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से इन केन्द्रों में आने लगे। इस सम्बन्ध में विश्वस्त विवरण प्राप्त है कि पुनर्वसु ऐतरेय ने अपने शिष्यों को आयुर्वेद विद्या में प्रशिक्षित करने के उद्देश्य से एक चल-विद्यालय की स्थापना हिमालय के इस भू- भाग में की थी और वे हिमालय की औषधियों के उत्पादक क्षेत्रों में स्वयं भ्रमण करते थे। इस चल-विद्यालय के द्वारा केवल वनौषधि-सम्पदा का अध्ययन तथा संग्रह ही नहीं किया जाता था बल्कि इन क्षेत्रों के निवासियों को उनके निवास स्थानों पर ही चिकित्सा भी उपलब्ध कराई जाती थी। चरक संहिता में इस प्रकार के अनेक सन्दर्भ हैं तथा अनेक स्थानों के नाम उल्लिखित हैं, जैसे—

(1) उत्तर हिमवान पार्श्व (च० च० 19/3)
(2) कैलाश (च० च० 13/3)
(3) किन्नर प्रदेश (च० च० 1/4/3)
(4) गन्धर्व प्रदेश (च० च० 1/4/3)

ये सारे स्थान हिमाचल प्रदेश में हैं। भारतवर्ष के साधु-महात्माओं का जीवन के प्रति दृष्टिकोण 'समन्वयात्मक इकाई' का रहा है। उनके लिए जीवन सारे अध्ययन का केन्द्र है। उन्होंने विभिन्न विद्याओं तथा संकायों के मध्य विभाजक रेखा खींचने का यत्न आवश्यक नहीं समझा। ये महात्मा भौतिक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक अध्ययन में एक समान विशेषज्ञ होते थे। आयुर्वेद आध्यात्मिक तथा सामाजिक पहलुओं से मानव-समाज की सेवा का एक माध्यम था। औषधि-विज्ञान की अन्य पद्धतियों व प्रणालियों के विपरीत आयुर्वेदाचार्य बीमारी के बाह्य-लक्षणों व प्रकटाव को दबाने में ही विश्वास नहीं रखते थे बल्कि वे विभिन्न जलवायु तथा ऋतुओं में अलग स्थानों के निवासियों पर दवाइयों के प्रभाव का गहन अध्ययन भी करते थे। उन्होंने अनेक बार किन्नर-कैलाश और कैलाश की अन्य चोटियों पर, जहां वास्तव में किसी प्रकार की वनस्पति उत्पन्न नहीं होती, इस हेतु शिविर स्थापित किए।

भौतिक-विज्ञानों के अतिरिक्त आयुर्वेद के बहुमुखी उद्देश्यों के अन्तर्गत धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि भी रखे गए। आयुर्वेद के प्रचारक इन उद्देश्यों की शिक्षा अपने शिष्यों को देते थे। जब सप्तसिन्धु प्रदेश पर वाह्य आक्रमण होने लगे तो ऋषि मुनियों ने अपनी विद्या के संरक्षण तथा शोध के उद्देश्य से पर्वतीय क्षेत्रों में अपने स्थायी निवास-स्थान बनाए ताकि वे अपनी महत्वपूर्ण उपलब्धि को वाह्य-प्रभाव में विलीन होने से बचा सकें तथा शान्त वातावरण में अपना कार्य कर सकें। उदाहरण के लिए नागार्जुन जो रस-शास्त्र के प्रसिद्ध प्रचारक थे, ने कांगड़ा के ज्वालामुखी स्थान पर अपना अध्ययन तथा शोधकार्य किया और बाद में अपनी गतिविधियों को लाहुल स्पीती की चन्द्रभागा घाटी में त्रिलोकनाथ के स्थान पर स्थानान्तरित किया।

आयुर्वेद-विद्या के अध्येता अनेक रियासतों में, जहां उन्हें अपने कार्य के लिए अभिभावकत्व उपलब्ध था, बसे। यह निस्सन्देह गौरव की बात है कि आयुर्वेद विद्या के महान् आचार्य श्री राम प्रसाद तथा उनके सुपुत्र पद्मभूषण पंडित शिवशर्मा जी जो वर्तमान समय के आयुर्वेद-विद्या के सशक्ततम विद्वान तथा स्तम्भ हैं, हिमाचल प्रदेश के टकसाल गांव में जन्मे हैं। औषधि-विज्ञान की अन्य परम्परायें जो आक्रामकों द्वारा इस देश में लाई गई थीं इस प्रदेश के सुदूर तथा दुर्गम भागों में नहीं पहुंच पाईं और यहां अद्यतन इस विद्या को चिकित्सा का एकमात्र साधन माना जाता रहा। इस प्रकार आयुर्वेद हमारी संस्कृति का एक अभिन्न तथा महत्वपूर्ण अंग बन गया है। अति प्राचीन काल से प्रचलित परम्पराओं तथा सांस्कृतिक विचारधाराओं और वनौषधियों के असीम भण्डार के कारण प्रदेश के समाज में न केवल बड़े-बूढ़ों बल्कि यहां की आदिम जातियों, यथा, गूजर और गद्दियों के पास असाध्य रोगों के इलाज तथा वनौषधियों का ऐसा आश्चर्य-जनक संरक्षण है, जिससे चिकित्सा-विज्ञान की आधुनिकतम पद्धतियां भी परिचित नहीं हैं।

सन् उन्नीस सौ सैंतालीस अर्थात् स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् चिकित्सा की स्थानीय पद्धतियां सारे देश में आकर्षण का केन्द्र बनीं। प्रदेश की संस्कृति में आयुर्वेदिक उपचार इस प्रकार आत्मसात हो गया है कि ऐसा कोई बिरला ही गांव होगा जहां स्थानीय बूटियों के एकाधिक जानकार न हों। अत: हमारा यह नैतिक कर्तव्य हो जाता है कि हम जहां

संस्कृति के अन्य पक्षों का अध्ययन करें वहां ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित इस चिकित्सा-पद्धति के अंगों-उपांगों तथा जन-जीवन पर उनके प्रभाव के विषय में भी खोज-बीन करें तथा अपनी प्राचीन परम्पराओं को सुरक्षित रखें। हमारे दैनिक जीवन में इस विद्या के सम्बन्ध में जो अवदान, कथा-कहानियां तथा मुहावरे आदि प्रचलित हैं उनका संकलन किया जाना हमारे लिए बहुत हितकर है। स्थानीय लोगों द्वारा अनेक महत्वपूर्ण उक्तियां इस चिकित्सा-पद्धति के सम्बन्ध में कही जाती हैं, यथा-

जित्थु बण्हा, बसूटी बरें ।
तित्थु माणूं किहां मरें ।।

अर्थात् जहाँ बण्हा-सम्भालू, बसूटी अर्थात् वासा या वसाका तथा बरया या बर नाम की तीन औषधियां वैद्य के पास हों वहां रोगी की मृत्यु कैसे हो सकती है, इत्यादि। इस प्रकार की सामग्री हमारी सांस्कृतिक थाती है अतः इसका संरक्षण व पोषण संस्कृति के अन्य अंगों की भांति ही महत्वपूर्ण तथा वांछनीय है।

—बैनमोर
शिमला–2

लोकगाथाओं का महत्व केवल इसी बात में नहीं है कि उनमें आदिम, अकृत्रिम तथा आकर्षक काव्य-प्रेरणा उपलब्ध होती है। वे परम्परा से चली आ रही भाषा में ही अपनी अभिव्यक्ति नहीं करतीं प्रत्युत जनसमूह की वाणी द्वारा भी प्रकाशन करती हैं। उनमें किसी भी प्रकार की गोपनीयता नहीं पाई जाती।...... वे स्वतन्त्र तथा खुली हवा की भांति ताजी हैं।

—एफ0 बी0 गूमर

बिलासपुरी जन-जीवन में विशिष्ट अर्थ वाले शब्दों का अध्ययन

—मनसा राम शर्मा 'अरुण'

स्थानीय इतिहास भगवान कृष्ण द्वैपायन व्यास के गौरवमय नाम को जिस स्थान से सम्बद्ध करता है उसी का आगे चल कर बिलासपुर नाम ग्रहण कर लेना उसके ऐश्वर्य और विलास के आधिक्य को सूचित करता है। स्वभावतः मनुष्य परम्परा से चले आए हुए नाम को उसी रूप में ग्रहण करने का अभ्यासी हुआ करता है पर जब हम ऐतिहासिक नाम को ओढ़कर चलने वाले किसी स्थान के लिए एक अन्य अभिधान जुड़ा हुआ पाते हैं तो उसके पीछे किसी खास युग की कोई विशिष्ट घटना सम्बद्ध होती है। ईसा की सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के प्रथम दशक में व्यासपुर के नाम को लेकर चलने वाली राजधानी में जब समृद्धि का एक ज्वार सा आ गया तो चारों ओर आनन्द का साम्राज्य फैल गया। कारण यह था कि इस राज्य के सम्बन्ध दिल्ली के मुगल शासकों[1] के साथ काफी अच्छे थे अतः व्यासपुरी में धर्म की दृष्टि से मुसलमान[2] फकीर और हिन्दु संन्यासी दोनों का एक जैसा सम्मान होता था। धर्म की साम्यता के साथ बाहिर के व्यापारीवर्ग के इस राजधानी की ओर आकर्षित होने के कारण अन्य लोग भी यहां आकर बसने लगे थे। व्यापारीवर्ग प्रसन्न था अतः वैभव की उठान आई और वैभव की वृद्धि पर विलास की बाढ़ सी आ गई। उसी आनन्दातिरेक में पुराना नाम नये नाम के नीचे दब गया। 'व्यासपुर' से बिलासपुर के नाम के पीछे सर्वसाधारण में यही मान्यता प्रचलित है। इतिहास का अध्येता जब इस परिवर्तित नाम को देखता है तो उसके हृदय में एक गहरी सी पीड़ा उभरती प्रतीत होती है। किसी युग की जनता को परम्परा से चले आए हुए नाम में उलट फेर करने का क्या हक है? इतिहास के अतीत में गहराई से निरीक्षण करने की शक्ति के अभाव में यदि कोई शासक या फिर साधारण जन-वर्ग किसी ऐतिहासिक नाम को जिसके साथ समस्त देश के किसी महापुरुष का नाम जुड़ा हुआ है और जिसके साथ एक पवित्रता की भावना है और है साथ सम्बद्ध आगे आने वाली सन्तति के लिए गरिमामय-अभिमान—उस नाम को बदल देना क्या अन्याय की परम्परा में एक शक्तिशाली पग नहीं गिना जाएगा? पर ऐसी-ऐसी तथा इस से भी गम्भीर हिमगिरि के उत्तुङ्ग शृङ्ग का स्पर्श करने वाली गलतियों पर कौन दुःखी होता रहे! समय की मनमानी!

1. "He (Raja Dip Chand) was sent on an expedition to the N. W. F. with his contingent by Aurangzeb"........ Census Report, 1961 (page—63)
2. "Accompanied by four faquirs as his advisers—two Hindus and two Muhammadans, he sought a new sight for the capital.........." Census Report 1961, page 63 (Distt. Bilaspur, H. P.) (An extract from History of Punjab Hill States Vol., II).

सर्वसाधारण बोध के क्षेत्र में 'विलास' शब्द का जो अर्थ किया जाता है, गत अनुच्छेद में उसके विरुद्ध हमारी भाव-प्रतिक्रिया प्रकट हुई है। निर्णय[1] तक पहुंचने के लिए पूर्वपक्ष[2] के रूप में यह स्थापना की गई है। 'बिलासपुर' शब्द में आए हुए 'विलास' शब्द की रचना-प्रक्रिया पर कुछ गम्भीरता से विचार करना होगा। ऐतिहासिक युगों में क्या 'बिलासपुर' इस अभिधान में मनमाना उलट-फेर हुआ है ? 'विलास' और 'बिलास'–इन दोनों शब्दों को एक दूसरे का पर्यायवाची मान लिया जाए या फिर एक शब्द को दूसरे का तद्भव रूप स्वीकार कर लिया जाए तब तो कहना पड़ेगा कि उलट-फेर होने में कुछ सम्भावना है; पर ज़रा गहराई के साथ विचार करने पर यह निर्णय निकलता है कि ये उपर्युक्त दोनों शब्द एक एक ही शब्द के तत्सम् और तद्भव रूप नहीं है। पहाड़ी भाषाओं में साधारण-तया 'व' का उच्चारण 'ब' के रूप में प्रचलित है अर्थात् दन्त्यौष्ठ्य[3] 'व' को ओष्ठ्य 'ब' के रूप में बोला जाता है अतः एक के स्थान पर दूसरा समझ लेने के कारण यह सब बखेड़ा उठ खड़ा हुआ। पहाड़ी भाषा के उच्चारण का उदाहरण लेकर 'बिलास' शब्द को 'विलास' का स्थानापन्न या तद्भव रूप न मानकर मौलिक रूप से शुद्ध स्वीकार करना होगा। दन्त्यौष्ठ्य 'व' को ओष्ठ्य 'ब' के रूप में उच्चारण करने की प्रक्रिया अन्य पहाड़ी शब्दों में भले ही हो, इस शब्द में सम्भवतः स्वीकार नहीं भी की जा सकती है।

इतिहास 'व्यासपुर' के प्राचीन शब्द को स्वीकार करता है, और इस शब्द को कृष्ण द्वैपायन महर्षि वेद व्यास के साथ सम्बद्ध करता है। 'व्यासगुफा'[4] आज भी ऐति-हासिक स्थान स्वीकार किया जाता है और उसके द्वार पर रखी हुई काली भव्य मूर्ति छलछलाती शतद्रु के पुलिन पर बनी हुई व्यासगुफा की ओर संकेत करती है। उसी व्यासगुफा के पार्श्व में जिस नगरी को बैठाया गया था उसी का नाम बिलासपुर हुआ। शब्दों के अर्थ और प्रयोग पर अनुशासन रखने वाले व्याकरण की दृष्टि से 'बिलास' शब्द दो विभिन्न शब्दों से निष्पन्न हुआ समस्त-शब्द है। वे दो शब्द हैं – 'बिल' और 'आस'। दोनों संज्ञा शब्द हैं जो 'बिल'[5] और 'आस'[6] धातुओं के आगे कृदन्त प्रत्यय जुड़ कर बने हुए हैं। इस प्रकार के व्याकरण सम्बन्धी विश्लेषण से 'बिलास' शब्द का अर्थ हुआ 'बिल' के पास बैठा हुआ या स्थापित किया गया 'पुर' या नगर। 'बिल' का अर्थ यहां 'व्यासगुहा[7]' से लिया जाता है। इस निरुक्ति से ऐतिहासिक महर्षि से सम्बद्ध नाम में किसी

1. विमृश्य पक्ष-प्रतिपक्षाभ्यामर्थावधारणं निर्णयः (न्यायदर्शन 1-1-41)
2. प्रतिषेधव्यं वाक्यं पूर्वपक्षः (कौ० अर्थशास्त्र 15-1-5)
3. वकारस्य दन्त्यौष्ठम् (पाणिनि अष्टाध्यायी)
4. ......"a new site was finally fixed upon a place on the left bank of Sutlej, traditionally, called Vyasgufa"......Census Report 1961 Distt. Bilaspur (H. P.) .. .. .. (*Page* 63)
5. √बिल–भेदने (तुदादि–68)
6. √आस-उपवेशने (अदादि–4)
7. बिलं-रन्ध्रे, छिद्रे, गुहायाम् (अमरकोश—पातालभोगि वर्ग—श्लोक 1)

प्रकार का विरोध नहीं खड़ा होता और न तो उसे पहाड़ी परिवर्तित उच्चारण का नाम देकर लम्बी खींचातानी करके विलास से सम्बन्द्ध ऐश्वर्य अर्थ निकलता है। हां, यहां इतनी बात अवश्य स्वीकार करनी पड़ेगी कि अर्थ-विज्ञान के अन्तर्गत परिगणित होने वाले अर्थ से सम्बद्ध प्रकाश–विक्षेप सिद्धान्त[1] की यदि संज्ञा सर्वांश में मान ली जाए तो उप-र्युक्त दोनों अर्थ ठीक सिद्ध हो जाते हैं।

किसी भूभाग में एक प्रकार की अपनी विशेषता होती है जो वहां के जन-जीवन को प्रभावित करती हैं। विशिष्ट प्रकार का भौगोलिक दाय विशिष्ट प्रकार की मानसी वृत्ति उत्पन्न करता है। पहाड़ी वातावरण अनिवार्य रूप से समतलीय वातावरण से विभिन्नता रखता है। यह एक दूसरी बात है कि एक वातावरण का दूसरे के प्रति भूगोल के उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों के समान अत्याधिक आकर्षण रहता है। यही आकर्षण हमारी सांस्कृतिक भावात्मकता के परिवेश में आबद्ध होकर इस भारत जैसे विशाल देश को एक गम्भीर-गहन पारस्परिक सौहार्द में आज तक बांधे हुए हैं। अतीत की गाथाएं इस तथ्य को बार-बार दुहराती हुई युगों को नापती मौन धीर गति से भविष्य की ओर चली जा रही हैं। तथ्य एक ही हर युग का, पर वेशभूषा कुछ अन्तर लिए हुए ! वैदिक युग का एक स्वर्णिम प्रहर बीत रहा था। प्रकृति अपने अल्हड़ सौन्दर्य में लिपटी हुई थी। उसके सौन्दर्य से विमुग्ध राजर्षि विश्वामित्र पहाड़ों की तलहटियों में घूम रहे थे। प्रवृद्ध वेग वाली शतद्रु पथ पर अड़ कर खड़ी हो गई। राजर्षि ब्रह्मर्षि बनकर वैदिक ऋचा के माध्यम से विनीत हो उठे और विनय के स्वर में सस्वर बोल उठे –

"रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः ।
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः ।।

ऋग्वेद : (3.33.5)

एक मस्तानी नदी के पुलिन पर खड़े हुए एक महर्षि की प्रार्थना है यह ! शब्द कितना अमर है ! युग बीत गये और अतीत की अतलगुहा में विलीन हो गये, पर इन शब्दों के माध्यम से की गई हार्दिक प्रार्थना आज भी देश और विदेश के सभी अच्छे-अच्छे पुस्तकालयों के बीच ऋग्वेद की तहों में लिपटी पड़ी है। इन अमर शब्दों में कोई जातिवाद का प्रश्न नहीं, कोई धर्म सम्प्रदाय की छाप नहीं ! खुले आसमान के नीचे उन्मुक्त हृदय की भावनाओं की सशक्त अभिव्यंजना ! प्राचीन परम्परा की भूमि पर प्रत्येक युग शब्दों की निरुक्ति विचारानुकूल करता रहता है क्योंकि प्रत्येक युग की अपने व्यक्तित्व के प्रति कुछ आसक्ति हुआ करती है, जो स्वाभाविक है। नहीं तो फिर सृष्टि आगे कैसे बढ़े। अपना-अपना योगदान ! अपनी-अपनी लगन और अपना-अपना कार्य करने का ढंग यहां बन्धनहीन उदण्डवाद की ओर संकेत नहीं है, केवल अपने व्यक्तित्व को उभारने के प्रयास की दिशा बताई गई है।

1. Multiplicity of Meanings or Radiation Theory.

इसी सन्दर्भ में महाभाष्यकार पतंजलि का यह कथन भी ध्यान देने योग्य है– "सकृदुच्चरितः शब्दः – यौगपद्यमतिक्रम्य पर्याये व्यवतिष्ठते"।

शतद्रु के उच्छृंखल वेग को अपने में आबद्ध करने वाली वैदिक ऋचा की बात हो रही थी। कभी-कभी अमर शब्दों का यह शाश्वत प्रवाह सामने न होने से स्थानीय भाषा के प्रति ऊल-जलूल कल्पनाएं होने लगती हैं। क्या किया जाए! होती हैं तो होने दो। समय का प्रवाह सरपट दौड़ता जाएगा – एक सधे हुए अश्व के समान । कोई अन्तर नहीं आएगा इस प्रवाह में। 'कुशिकस्य सूनुः' 'सूनुः'' के सादृश्य पर मुन्नु, डुन्नु, तुन्नु, विन्नु, आदि शब्दों का एक प्रवाह बह चला बनता हुआ, सत्ता में आता हुआ । कुछ पग और आगे चले तो दधोनु, पदेनु, खेनु, डेनू, पैंनु । प्रवाहमयी धारा में एक और प्रकार की लहर–टेरनु, घेरनु, धन्नु, जन्नुहु आदि । किसी में 'नु' कैसा जुड़ा हुआ है तो किसी में कैसा। यदि किसी युग ने उलटे रूप में जोड़ा और किसी ने सीधे रूप में तो आपको क्या आपत्ति ! आप भी मन मर्जी से जोड़ो। खूब जोड़ो, उलटा जोड़ो सीधा जोड़ो, और फिर उसको तोड़ो। तोड़ना जोड़ना यही तो आज के मनोविज्ञान के अनुसार शिक्षा के उपवन में प्रथम पद संचरण करते हुए शिशु की अर्थवत्ता से भरी हुई क्रीड़ाएं हैं। किसी स्थान का वातावरण बहुत धीमी गति से बदलता है क्योंकि वहां की भूमि और उस पर उगने वाली जीव-सृष्टि शीघ्रता से अपनी प्रकृति में उलट फेर की शीघ्रगामी कलाबाजियां नहीं खाना चाहती । किसी स्थान के धरातल पर उगने वाली यही दृश्यमान जड़-जीव सृष्टि उस पर सांस लेने वाले जन-जीवन पर प्रभाव डाला करती है। आंखों में बार-बार रूपायित होने पर उस जन-जीवन का यह अभिन्न अंग बन जाती है।

साधारण जन-जीवन स्वयं को स्थानीय भाषा या बोली के माध्यम से अभिव्यंजित करता है। अभिव्यंजना के माध्यम और जन-जीवन के सम्बन्ध में जब वर्णन होने लगा तो हमें यहां थोड़ा सा ठहरना पड़ेगा। हमारे चारों ओर का दृश्यमान संसार रूपमय[1] है। इन्हीं रूपों को हम भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं। ये ही नाम[2] लोक व्यवहार का माध्यम बन जाते हैं। ध्वन्यात्मक शब्दों की वेशभूषा पहन कर भावाभिव्यंजना के अन्य संकेतादि माध्यमों से नामात्मक शब्द माध्यम शक्तिशाली सर्वतो विसारी[3] और सूक्ष्म[4] हुआ करता है; इसीलिए लोक व्यवहार[5] स्वयं को इसी सूक्ष्म माध्यम से चलाना पसन्द करता है। व्यवस्थित क्रम इस प्रकार है – सर्व प्रथम दृष्टि के परिवेश में आई हुई किसी वस्तु की आकृति मानस-पटल पर अंकित होती है ; फिर उसे अनुभव मार्ग पर लाने के लिए परम्परा से प्रचलित नाम या शब्द को कर्णेन्द्रिय द्वारा ग्रहण किया जाता है। इसी ग्रहण की प्रक्रिया में कभी-कभी ध्वन्यात्मक शब्द अपनी आकृति बदल लिया करता है। इस प्रकार के परिवर्तन के बहुत से कारण हैं। साधारणतया कारणों के पचड़े में न पड़कर हम विकासवादी सिद्धान्त के अनुसार कह देते हैं कि शब्द 'तत्सम्' रूप छोड़कर 'तद्भव' बन गया । 'तद्भव' निर्माण कार्य कभी शब्द का कनपटी से आधा टकरा जाने से होता रहता है या कभी-कभी जिह्वा की आधी रगड़ खाकर भी ऐसा होता है। यहां

1. देवो रूपाणि चक्रे।
2. वयं नामानि कृण्मसि ।
3. व्याप्तिमत्वात्तु शब्दस्य (यास्क निरुक्त 1.1.2 (5) ।
4. अणीयस्त्वाच्च – (वही) ।
5. संज्ञाकरणं व्यवहारार्थं लोके (वही) :

'जिह्वा' से तात्पर्य जिह्वामूल से लेकर जिह्वानोक तक के उच्चारण स्थानों से है। विकास मार्ग पर चलती हुई मानवसृष्टि शब्दों को भी अपने साथ घसीटती रहती है। इस विकासमार्ग पर मानव की तरह शब्द को भी कई संघर्षों के झमेले में झूमना पड़ता है। इसी संघर्ष को टक्करबाजी, मुक्केबाजी, संगीतबाजी, काट-छांटबाजी बाजियों के कोश में आप कोई भी नाम दे दीजिए । इसी लिए कहना पड़ रहा है कि इस बाजी विद्या में कभी-कभी शब्द टूट-फूट कर पंखहीन पंखेरू लगता है जिसे हम पहचान भी नहीं पाते।

'बिलासपुर' शब्द पर विचार कर लेने के बाद मानव के सर्वसाधारण जीवन में शब्दों के उच्चारण में होने वाली प्रक्रिया का निरूपण किया गया है। अब हम बिलासपुरी जन-जीवन में प्रयुक्त होने वाले कतिपय विशिष्ट शब्दों के अर्थों का अध्ययन करेंगे । इस निबन्ध में उदाहरणीय शब्दों के मूल में हमने 'म' वर्ण को लिया है ; इसलिए कि यह ध्वनि प्रकृति की मातृशक्ति का प्रतिनिधित्व करती है। शून्य के बीच पड़ा हुआ जीव जब सर्वप्रथम मायाप्रपंचपूर्ण विश्व में सांस लेता है तो उसकी प्राणशक्ति स्फोटक-स्पर्श के प्रयत्न में आवेष्टित होकर नासिक्य[1] द्वयोष्ठ्य[2] 'म' की ध्वनि के रूप में बाहिर निकलती है। संसार की सभी वस्तुएं पंच महाभूतों के उपादान-रूपी मल से उत्पन्न होकर दृश्यमान संसार में आती हैं और इस माया को देखकर चकाचौंध हो जाती हैं। आह ! क्या लावण्य है! क्या गतिशीलता है!! क्या अद्भुत प्रपंच है!!!

इसी लावण्य के सन्दर्भ में 'म' के साथ दूसरी ध्वनि 'ल' चुनी गई है । ध्वनिशास्त्र के अनुसार 'ल' का विश्लेषण है–पार्श्विक सघोष दन्त्य। पहाड़ी भाषा में 'ल' का उच्चारण 'ळ' में भी बदल जाया करता है, अतः कुछ शब्द संघर्षी सघोष मूर्धन्य ध्वनि 'ळ' से निर्मित हुए भी लिए गये हैं। इन उपर्युक्त दोनों ध्वनियों में 'अ' 'इ' और 'उ' की स्वरध्वनियों को मिलाकर शब्दों की एक परम्परा बन जाती है । इन शब्दों में स्वरध्वनियां कहीं ह्रस्व रूप में तो कहीं दीर्घ रूप में मिलाई गई हैं।

1. (अ) म्मां=(अ) म्+म्+आं=माता, जननी ।

यहां पर अकेले 'म्मां' का उच्चारण करने में कठिनाई आती है, इसलिए प्रारम्भ में 'अ' वर्ण को जोड़ लेते हैं अन्यथा उच्चारण की दृष्टि से 'म्मां' पर बलाघात नहीं दिया जा सकता । अर्धविवृत, प्रसारित ओष्ठ, मध्यवर्ती 'अ' ध्वनि सर्वतोविसारी अर्थ में गृहीत होती है। 'अ' अक्षर, अविनाशी का प्रतीक है और सर्वव्यापक परब्रह्म का स्वरूप है। इस प्रकार सभी ध्वनियों की समष्टि से इस शब्द का अर्थ हुआ–सर्वव्यापक मातृरूपा प्रकृति-शक्ति। प्रारम्भ में 'अ' फिर 'म्म्' और अन्त में 'आं'–दार्शनिक अर्थ है सर्वप्रथम शून्य फिर अपनी द्विगुणी शक्ति से प्रकाशित प्रकृति और उसके पश्चात् उसी प्रकृति का महाविस्तार ! इसी शब्द के माध्यम से सृष्टि के उद्भव और विकास की कहानी। पहाड़ी भाषा में प्रचलित यह एक प्रमुख शब्द है।

1. ञमङणनानां नासिका च।—(सिद्धान्त कौमुदी—भट्टोजिदीक्षितः)
2. उपूपध्मानीयानामोष्ठौ ।—संज्ञा प्रकरणम् (वही) ।

2. मल-मल=म्+अ+ल्+अ+पुनरावृत्ति=बहुत महीन वस्त्र, मल मल कर निकाला हुआ, बहुत कोमल।

इस निबन्ध के सातवें अनुच्छेद में 'म' और 'ल' इन दो ध्वनियों का जो एकाक्षरी अर्थ स्पष्ट किया गया है, वही मौलिक अर्थ इस संदर्भित शब्द के दूसरे और तीसरे अर्थ में संक्रान्त होता चला गया है। पहाड़ी भाषा में अत्याधिक कोमलता और अत्याधिक सौन्दर्य प्रकट करने के लिए कपड़े, 'चादरू'[1] या 'थिप्पू' के माध्यम से इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। प्राचीन काल में पहाड़ों की तलहटियों में यदि किसी सुन्दरी ने मल-मल का वस्त्र धारण किया होता तो उसे उत्तुङ्ग कुलीनता और धनाढ्यता का प्रतीक मान लिया जाता था। 'मल-मलारा कुरता,' 'मल-मलारी सुत्थण' आदि वाक्यांश मुंह से शब्द के रूप में बाहिर आते ही उदग्र साहित्यिक भावनाओं को उभाड़ने लग जाते हैं। आज तो प्राचीनता के इस प्रकार के सौन्दर्य-मानदण्ड यूरोपीय चंचल, थिरकन और चुभन से अनुप्राणित लवादों की तहों में सिमिट कर विलीन हो गये हैं। समय-समय की बात है! कभी कुंजलीमयी सुत्थण, कभी विस्तारवादी गरारे तो कभी लंहगों की परिधि का पुनरावर्तन करने वाले लवादे!

3. √मल=म्+अ+ल्+अ=मलना, मर्दन करना।

यह एक धातु है। ऐतिहासिक अर्थ-विज्ञान (Diachronic Sematics) का सहारा लिया जाए तो यह धातु दो विभिन्न मूलधातुओं से निकली हुई प्रतीत होती है। मूल धातुएं हैं– √मृड़ और √मद्। शब्दों की ऐतिहासिक चाल प्रशस्त राजमार्ग पर ही सदा नहीं रहा करती। वह कभी कभी इधर उधर की पगडंडियों में घुसती चली जाती है। जब वह प्रशस्त राजमार्ग छोड़ इस प्रकार की अन्धेरी ऊबड़-खाबड़ पगडंडियां अपनाती है तो निरुक्ति में थोड़ी मुश्किल सामने आकर खड़ी हो जाती है। मृड् धातु से इस प्रकार विकास हुआ माना जा सकता है–मृड्>मर्ड>मड़>मल्।

इस विकास के सम्बन्ध में इतना भर कहा जा सकता है कि अपनी यात्रा पर भविष्य के युगों की ओर खिसकते हुए शब्दों में 'र' 'ल' और 'ड़' वर्ण अपना स्थान परस्पर बदलते रहते हैं। इसका एक उदाहरण ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त का पहला मन्त्र[2] है। √मृद् से विकास इस सम्भावना-मार्ग पर चलता हुआ प्रतीत होता है–√मृद्>मर्द> मर (द) > मल्। पहले भी लिखा जा चुका है कि

1. ओ ऽऽ मलमलारा चादरू उड़दा
ओ ऽऽ देखणे जो चन्द वी मुड़दा
जान मेरी सूलिया टंगी
दिल चलीग्या तुहकनें जुड़दा ॥ 3 ॥

–आँगरदी लूंग (2.3)

2. अग्निमीले पुरोहितं .... (ऋग्वेद 1.1.1.)

पहाड़ी भाषा में 'र' और 'ल'[1] स्थान बदल लेते हैं, और 'ल' 'ल़' में परिवर्तित हो जाया करता है। उदाहरण इस प्रकार हैं:–

1. जंघा मल़=टांग को मालिश करके नरम बना।
2. आट्यो मल़=आटे को गूंथ कर उसकी कठोरता दूर कर।
3. अफसरांर्या पैरां मल़=चापलूसी कर।
4. लूंगांजो पैरां थल्ले नीं मल़=मत रौंद।

4. मल=क्रमांक (3) की तरह=मल में उत्पन्न होने वाले पेट के कीड़े–विशेषकर पुरीष में जन्म लेने वाले।

मूल शब्द 'मल' है जो आयुर्वेद[2] और दर्शनों[3] में वात, शुक्र आदि शरीर से निकलने वाले दूषित पदार्थ या गन्दगी के रूप में उपलब्ध होता है। यहां ध्वनि-विज्ञान की पारिभाषिक शब्दावली में पार्श्विक सघोष दन्त्य '(ल)' संघर्षी सघोष मूर्धन्य 'ल' में बदल गया है। किसी शब्द में उपलब्ध होने वाला नानार्थत्व प्राय: विकासशील भाषा और उसके माध्यम से समृद्ध सभ्यता का प्रतीक हुआ करता है। इस पृष्ठभूमि में यदि यहां विचार किया जाए तो 'मल' शब्द का लक्षणा आदि वृत्तियों के द्वारा उदण्डता, चंचलता, गन्दगी (अस्वस्थता) आदि का भाव भी ले लिया जाता है, जैसे–

1. हौए! मल़ सच्यारां एं?=बड़े उदण्ड अथवा चंचल बन रहे हो?
2. पेटा मल़ भरोई रे होर सिरा जूंआं।
पेट में गन्दगी भरी हुई है और सिर में भी। अर्थात् काफी गंदा बना हुआ है।
3. मलांरा लाज हऊं करां आ तां।
तो मैं दूर करता हूं सारी बीमारी!

5. √मला या √मल्या=म्+अ+ल्+आ=मिलाना।

ये दोनों धातुएं √मिल के प्रेरणार्थक रूप हैं। पहाड़ी में प्राय: आदि के 'इ' अथवा 'ई' का लोप हो जाता है, जब प्रेरणार्थक रूपों की रचना की जाए, जैसे–

1. प्रत्याहार सूत्रों में 'र' प्रत्याहार से 'र' और 'ल' दोनों वर्णों का बोध (पाणिनि की अष्टाध्यायी)।

1. (*i*) मल: पापे पुरीषे, वात-पित्त-कफेषु—माधव:
(*ii*) वसा शुक्र समृङ्, मज्जा मूत्रं विट्कर्ण विट्नखा:।
श्लेष्माश्रु दूषिका स्वेदो द्वादशैते नृणां मला: ॥

—मनुस्मृति: (5.135)

3. असंग: पुरुष: प्रोक्तो बृहदारण्यकेऽपि च।
अनन्त मल संश्लिष्ट: कथं स्याद्देहक: पुमान् ॥

—अपरोक्षानुभूति: (36)

पीणा–प्याणा; खिजणा–खंज्याणा; टिरना–टर्याणा; सीणा–स्याणा; फिरना–फर्याणा।

√मला का उदाहरण–भाइया, हत्थ-त मला मूहने ! अर्थात् भाई, मेरे साथ हाथ तो मिलाओ!

6. मली=म+अ+ल्+ई+=मल+करके।

पहाड़ी भाषा में संयुक्त क्रियाएं बनाते समय मूल धातु में 'ई' जोड़ दिया जाता है। इसी नियम के अन्तर्गत पूर्वकालिक और उत्तरकालिक कृदन्तों की भी गणना हो जाती है। 'मली'+में √मूल धातु मल् है।

उदाहरण–(*i*) तेलाने तिसरी बांह मली दित्ती=तेल के साथ उसकी भुजा मल दी गई।

(*ii*) सिरा मली ने सावण ला=सिर को मल कर सावन लगा।

7. मली मास = मल+मास = मलमास,[1]।

पहाड़ी की संयुक्त क्रिया बनाने के नियम के साम्य पर बना हुआ शब्द।

8. √मल्ल––म्+अ+ल्+ल्+अ —पकड़ना[2], पाना, अधिकार करना।

यह धातु प्राचीन ग्रन्थों में भी इसी अर्थ में उपलब्ध होती है। हिन्दी में धातु के रूप में यह समाप्त हो गई है; पर इससे निष्पन्न 'मल्ल' आदि शब्द अभी तक प्रचलित हैं। पकड़ने, अधिकार[3] करने के अर्थ में उदाहरण इस प्रकार हैं–

तूंह् उत्थी जाईके असांरे खातर वी थांओं मल्ली लैंयां, नीं तां पता नीं खड़ा ई रैंह्णा पौए। अर्थात्-तू वहां जाकर हमारे लिए भी स्थान रख लेना (अधिकार कर लेना) नहीं तो पता नहीं (हमें) खड़ा ही रहना पड़े।

9. मल्ल–क्रमांक (8) के समान=कुश्ती लड़ने वाला, खास स्थान पर अधिकार करने वाला।

---

1. ऐसा महीना जो धार्मिक दृष्टि से ठीक नहीं माना जाता। तेरहवां मास।
"अमावास्याद्वयं यत्र रवि-संक्रान्ति वर्जितम्
मलमासः स विज्ञेय: ——————"

2. मल्ल–धारणे (सिद्धान्त कौमुदी–भ्वादिगण)

3. To hold, to possess (Monier—Williams Page 792)

पकड़ने, पाने, रखने तथा अधिकार करने के मूल अर्थ 'मल्ल आदि शब्दों में संक्रान्त होते चले जा रहे हैं। संस्कृति और सभ्यता के विकास और प्रसार के साथ विभिन्न अर्थों में शब्द का मूल अर्थ अपना बहुमुखी प्रसार करता चलता है।

छिंझाच मल्लांरा घोल देखणे जोगा था—अर्थात् कुश्ती में पहलवानों का दाव-पेच देखने योग्य था।

10. मल्ला=म्+अ+ल्+ल्+आ=कालर के पीछे कमीज़ के पृष्ठ-भाग पर लगाई जाने वाली कपड़े की फांक।

वह फांक एक खास स्थान पर लगाई जाती है; इसलिए यहां भी शब्द का प्रयोग विशेषाधिकार में हुआ है। इस प्रकार निरुक्ति हुई– जो (वस्त्र-खण्ड) एक स्थान पर विशेषाधिकार कर लेता है वह मल्ला होता है।

11. मल्ली[1]=म्+अ+ल्+ल्+ई=मिट्टी का बना हुआ एक छोटा सा ढकना। स्थान घेरना या अधिकार करना– ये मूल अर्थ इस शब्द में भी संक्रान्त हुए हैं।

12. म.ल्ही–म्+अ+ल्+ह्+ई=कोल्हू में निकाले गये तेल के नीचे बैठा हुआ मैल। इस पहाड़ी शब्द में भी 'मल' का मूल अर्थ सुरक्षित है।

उदाहरण– इस तेलाच म.ल्ही बौह्.त जादे ई—इस तेल में मैल बहुत अधिक है।

13. माल=म्+आ+ल्+अ=पशुधन, सम्पत्ति, धन-दौलत।

इस शब्द की सिद्धि इस प्रकार है–मल+घञ्=माल। परन्तु इस मौलिक अर्थ से भिन्न पशुधन के रूप में पहाड़ी क्षेत्र में इस शब्द का प्रचलित होना अर्थ-विस्तार का उदाहरण है। उदाहरण–सैंह् माल चारने चली गआ। अर्थात् वह पशु चराने चला गया है। सम्पत्ति, दौलत आदि के अर्थ में यह शब्द अन्य भाषाओं में भी उपलब्ध होता है। इसी प्रकार विभिन्न वृत्तियों से विभिन्न अर्थ निकलते जाते हैं। भाषा के विकास की चाल! अर्थ विस्तार के करिश्मे!!

14. माल़ा– म्+आ+ल्+आ=पंक्ति, रेखा।

यहां शब्द-सिद्धि पूर्ववत है। केवल स्त्रीत्व की विवक्षा में आ (टाप्) प्रत्यय जुड़ गया है। मनकों की माला या फूलों की माला[2] के रूप में अधिक प्रयोग होता है—

तिसारे गल़ा स्यूने री माल़ा सज्या करदी—अर्थात् उसके गले में सुवर्ण की माला शोभा दे रही है।

---

1. ओ ऽऽ मल्लिया बिच मल्ल डुब्बीग्या।
ओ ऽऽ कौलिया विच काल रुब्बीग्या
प्रेमियां री छिंझ छेड़ीनें
गास कोई होठ चब्बीग्या (ओंगरदी लूंग–6)।

2. ओ ऽऽ सिरा सोहे माल़ती माल़ा
ओ ऽऽ मने बज्झया तिक्खणा जाल़ा
बोलदी तां बोल कोकलां
अन्दराते काल़जू काल़ा (ओंगरदी लूंग 1.7)

15. माली=म्+ग्रा+ल्+ई=माला बनाने वाला, बगीचे का रक्षक।

उदाहरण– किती गया बागा रा माली?—बाग का माली कहां गया?

16. माल्ली=म्+ग्रा+ल्+ल्+ई=भैंसा, मल्ल का सबसे बड़ा ईनाम। पहले ग्रर्थ में प्रयुक्त 'माल्ली' पुलिंग में रहता है।

उदाहरण–भैंसे को बुलाने के लिए–'ठी! ग्रो! ठीह् माल्ली'। दूसरे ग्रर्थ में प्रयुक्त यह शब्द स्त्रीलिंग में रहता है। ग्रखाड़े के बीच जब श्रेष्ठ दो पहलवान कुश्ती लड़ते हैं तो विजयी मल्ल को 'माल्ली'[1] दी जाती है। यह उसका सर्वोकृष्ट पारितोषिक हुग्रा करता है।

प्रस्तुत किए गये इस निबन्ध में हमने विषयवस्तु का इस प्रकार विवेचन किया है–

(i) बिलासपुर के सन्दर्भ में 'बिलास' शब्द का विवेचन,
(ii) जन-जीवन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर शब्द विवेचन,
(iii) विशिष्ट ग्रर्थ वाले सोलह शब्दों का संक्षिप्त ग्रध्ययन।

पहले निबन्धों में 'कहलूर' शब्द का प्रयोग होता रहा है। ग्रब की बार के इस निबन्ध में हमने 'बिलासपुर' शब्द का प्रयोग किया है इसलिए इसके सम्बन्ध में चर्चा करनी पड़ी। वैसे हिमाचल में भाषा के नाम पर उपभाषाग्रों के विभिन्न शब्दों का प्रयोग उचित नहीं है क्योंकि ऐसा करने से 'व्यक्तिगत[2] रूप रंग पर मोह' होने लग जाता है। शब्दों का ग्रनुशासन बताना था इसलिए 'बिलासपुर' जैसे व्यक्तिगत नाम पर थोड़ा सा विवेचन हुग्रा है। हिमाचली (पहाड़ी) भाषा तो निरन्तर[3] वाहिनी एक नदी के समान है–कई शाखाग्रों वाली। इसीलिए इस निबन्ध में सोलह शब्दों के विवेचन के समय हमने 'पहाड़ी' शब्द का ग्रधिक प्रयोग किया है। मेरा विनम्र निवेदन है कि यह विवेचन लगभग वैसा ही है जैसे कोई व्यक्ति राजमार्ग पर सरपट भाग रहा हो ग्रौर बीच में किसी चीज का ध्यान ग्राने पर उसने राजमार्ग के किनारे गड़े हुए सोलह खम्भों को गिनना प्रारम्भ कर दिया हो। मेरा विचार तो था कि प्रत्येक शब्द को एक स्वतन्त्र समस्या मान कर उस पर ग्रर्थ के सम्बन्व में ऐतिहासिक ग्रौर भौगोलिक गम्भीर विवेचन होता पर यह सम्भव महीं हो पाया। इसलिए भागदौड़ में ग्रांशिक विवेचन के लिए निवेदन किया है। पहले शब्द 'म्मां' को छोड़ ग्रन्य शब्द-कोश की व्यवस्था से रखे गये हैं जिससे कोश निर्माण में दिशा संकेत हो सके।

—राज्य शिक्षा संस्थान सोलन।

---

1. ग्रोऽऽ फेरि ग्राए खोटड़े ध्याड़े
   ग्रोऽऽ मल्ल माल्ली जीत्हगे माड़े
   कम भुल्ले लोक हुण सारे
   कणक रोंह्गी पारले ख्वाड़े (ग्रौंगरदी लूंग 2.2)
2. सदियांरे मोड़ –(पहाड़ी लघु वीर काव्य–पृ 0 29)।
3. "...... (language) is like a perenniel river......"
   —Himachal Pradesh: Area and language—Page 32 by Dr. Y. S. Parmar—Chief Minister.

कांगड़ी लोक-साहित्य: एक ग्रध्ययन

—डा0 ग्रात्मा राम

लोक-साहित्य लोक-जीवन का सच्चा प्रतिविम्ब है। वास्तव में यह लोक-जीवन का सार एवं मूलाधार होता है। इस का रचयिता कोई व्यक्ति विशेष नहीं होता। सारा समाज ही इसका जन्मदाता होता है। ग्रत: समूचा समाज, समाज के समग्र विचार, विश्वास तथा ग्रादर्श इस में ग्रंकित होते हैं। हमारा लोक-साहित्य से परिचय हमें ग्रात्मबोध की दिसा प्रदान करता है। इस के गहन ग्रध्ययन से पता चलता है कि 'हम क्या थे, क्या हैं ग्रौर क्या होंगे ग्रभीं'।

कांगड़ी लोक-साहित्य का इस संदर्भ में विशेष महत्व है। कांगड़ा चित्र–कला के लिये प्रसिद्ध एक ऐतिहासिक नगर है। यही घाटी है जो वीर सैनिकों का गढ़ कहलाती है। ज्वाला-जी का प्रसिद्ध मन्दिर इसी वादी में है जिस के बारे में कहा जाता है :–

"नंगे नंगे पैरीं माता ग्रकबर ग्राया
सोने दा छत्र चढ़ाया।"

कहते हैं महाराजा ग्रकबर ने ज्योति को बुझाने के लिये लोहे के तवे रखकर पानी की नहर उन पर डलवा दी पर 'ज्योति' न बुझी। फिर श्रृद्धालु बनकर सोने का छत्र मन्दिर पर चढ़-वाया। उसे 'छत्र' प्रस्तुत करने का गर्व हो गया। तो छत्र तांबे का बन गया। फिर उसने नम्र हृदय हो प्रार्थना की तब कहीं छत्र फिर सोने का बना।

कांगड़ा-वादी का संगीत कभी कम नहीं होता, कभी फीका नहीं पड़ता। यहां विवाह-गीत, प्रणय गीत, देश-भक्ति के गीत, मेले सम्बन्धी तथा धार्मिक गीत, 'ढोल्हरू' 'चाटकड़ी' 'धौलियां इट्टां, 'मण्डलियां' ग्रादि कई प्रकार के लोक गीत गाए जाते हैं। विवाह गीतों में घोड़ी, सुहाग तथा गालियां प्रसिद्ध हैं। यह घोड़ी बहुधा विवाहों में सुनी जाती है :–

"तेरेयां कपड़ेयां दे उप्पर लाड़ेया मोर बोलदे।
मोर बोलदे नीं चकोर बोलदे।
नी जलन्धर वाले बाबू बोली होर बोलदे।"

ईन गीतांशों में कितनी तीव्र संवेदना हैं :–

"जली जाए सौहरियां दा देस!
अम्मा जी, मैं नहीं बसणा।"
"तेरे मैहलां दे अन्दर वे!
बाबल मेरियां गुडियां रहियां।"

*　　　*　　　*

"खारियां दित्तियां बदलाई, हुण होई पराई।"

विवाह–गालियां एकदम तीखी तथा मजेदार होती हैं। जब बराती बधू के घर भात खाने बैठते हैं तो गालियों की वर्षा अकस्मात् ही आरम्भ हो जाती है :–

"आलु दी तरकारी है, हैजे दी बीमारी है।
थोड़ा-थोड़ा खाणा, अच्छा जी थोड़ा-थोड़ा खाणा।
घर बगाना, पेट अपणा, थोड़ा थोड़ा खाणा।"

यही नहीं, अधिक खाने पर उन्हें डराया भी जाता है। अधिक खाएंगे तो पेट में पीड़ा लगेगी :–

"बहुत बहुत खाओगे, पेट फुटी जाओगे
डाक्टर को बुलायेंगे, फीस देणी पड़ेगी!
अम्मा देणी पड़ेगी—थोड़ा-थोड़ा खाणा।"

प्रणय गीतों में 'गंगी–'चंचलो' तथा 'रत्नी' आदि विशेषतया प्रसिद्ध हैं। 'गंगी' के तो बहुधा 'टोटके' चलते हैं, जिसकी टेक है :–"गंगोए, बदाम रंगीए, ओ जानी।" 'इसरू' तथा 'रत्नी' में यहां के लोक-जीवन की क्या सजीव झलक मिलती है :–

"मैं तां गलाया तिजो कपड़े सियाई दे, कपड़े सियाई दे!
हुण कियां ब्याहे जो जाणा?"

बहुधा मेले में जाते समय तथा मेले में लोग प्रणय-गीत गाते हैं या 'गूगे' तथा देवी-देवताओं की भेंटें। मेले तथा छिंजें यहां बहुत होती हैं। कांगड़ा, ज्वालाजी, दियोट सिद्ध, गसोता, टौणी देवी, झन्यारी देवी, छलंजड़ी, पिपलू, नौण, बाबा लुदरु, बाबा बालक नाथ, चामुण्डा देवी, कनाल पत्थरी, वैजनाथ तथा वालकरूपी आदि में खूब मेले लगते हैं। 'पंघूड़ी' के गीतों से वादी गूंज उठती है। इन के रूप में यत्र-तत्र थोड़ा बहुत अन्तर है; परन्तु ये मूलतः एक ही हैं इनका कला तथा भावपक्ष समृद्ध एवं प्रभावशाली है। इन में विशेष गति है। उदाहरणतया एक गीत में लड़की वर को कहती है कि उस का पिता उसे बरात के साथ नहीं भेजेगा। लड़का कहता है कि अब तुम्हारे पिता का कोई अधिकार नहीं है। लड़की की धमकी

खाली गई। अब वह रोती है; उधर उसकी मां भी रो रही है, तो लड़का कहता है कि उन्हें रोना बन्द कर देना चाहिए।

काहनू आया सुनहरी पग बन्न के,
बाए जी ने नई भेजणी
"तेरे बाए दा जोर न कोई
डोली विच लई जाणी।"

तब लड़की करुणा–पात्र बनने के लिए पुकारती है परन्तु वह अब डोली में जा चुकी है :–

"अन्दर मेरी माता जो रोवे
डोली विच मैं रोंदीआं।"

परन्तु लड़का कहता है:—

"चुप्प करी के बह जा गड्डी विच,
रोणे दा ख्याल छोड़ दे।"

यहां पर हमारी मान्यताओं एवं मर्यादाओं का संगीतमय चित्र है। दियोटसिद्ध को 'पंघूड़ी', 'जागरा', ले जाते श्रद्धालु गाते जाते हैं:–

"बाबा तेरिया बाटड़िया जातरू दूरा ते आए!
ढोल नगारे जोड़ियां लई ने आए!
बाबा तेरिया बाटड़िया.........।"

इस विवाह–गीत में अलंकार की छटा देखते बनती है :–

"डारा ते बिछड़िए कोयले,
फिरी कदी फेरा पांगी?"
"मेरिए बागां दिए कोयले,
बागा छोड़ी कैह चल्ली ए?"

और—यह उदाहरण देखिये:–

"लड़का वे मोड़ टुटवे,
तेरे हरे-पिले चावरू कन्ने।"

*　　　*　　　*

"काहनूं आया सुनहरी पग बनी के,
दादा जी ने नईं भेजणी!"

कांगड़ा-वादी उन बलशाली, निडर सैनिकों तथा सैनिक-अधिकारियों की जन्म-भूमि है जिनकी अद्वितीय वीरता एवं बलिदान पर न केवल हिमाचल प्रदेश को बल्कि सारे भारतवर्ष को गर्व है। यहां प्रायः कहा जाता है कि "नौकरी मिल्टरी दी।" एक लोक-गीत में लड़की कहती है :-

"उआरे दिया धारा बकरी चरेंदी
मंझे चरेंदे गोरू।
जिने जे फौजी तकमा लाया,
में ता उसदी जोरू।"

लड़कियां भी वीरता में किसी से कम नहीं। एक 'घोड़ी' में कहा गया है :-

"अजकल दीयां कुड़ियां, वीरा !
बी० ए० ते एम० ए० पढ़ियां।
जा पाकेस्तान लड़ियां।"

देश-भक्ति के गीत जहां कांगड़ा-वादी का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करते हैं वहां देश-सेवा तथा निज संस्कृति के प्रति आस्था तथा शाश्वत प्रेम का भी प्रकटीकरण करते हैं।

इन गीतों में पठन-प्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी है। एक गीत (रणझुजणे) में कहा गया है :-

"हथे लैयो कलम दवात! चली जायो पढ़ने नुं।"

लड़का अपनी माता को पढ़ने का महत्व बताता हुआ कहता है :-

"अम्मा जी ! पढ़ना जरूर चाईदा"।

वह इस पर आपत्ति करती है, कारण है:-

"पुत्रा ! डंगरें कौण चारेगा ?"

यह निश्चिय ही एक जटिल समस्या है परन्तु लड़का इस का समाधान बताता है :-

कुछ दिन असां तां लैणे चारी,
कुछ दिन तुसां तां लैणो चारी।"

मतलब क्या—

"मिली जुली करना गुजारा।"

माता एक और रुकावट डालती है। कहती है कि पढ़ने का क्या लाभ ?

"पुत्रा ! पढ़कें तू केढ़ा डिप्टी कमीशनर बण जाणा।"

पुत्र तर्कपूर्ण उत्तर देता है –

"अम्मा जी ! पढ़ेयाँ ई डिप्टी कमिसनर होंदे।"

लड़के तो थोड़ा-बहुत पढ़ लेते थे; परन्तु लड़कियां प्रायः अनपढ़ ही रह जाती थीं। एक स्थान पर लड़की अपने जीवन को नष्ट सा अनुभव करती है क्योंकि उसे पढ़ाया नहीं गया। कितनी करूणामयी दशा है उसकी !

"भेडुआं चराई नाले रोई अम्मा जी,
मेरी अनपढ़ जिन्दड़ी ओ।"

वह अपने पिता से आग्रह करती है कि :-

"मिजो स्कूले पढ़ा मेरे बावला !,
मिजो स्कूले पढ़ा ओ।"

उसे अधिक लालच भी नहीं है—वह थोड़ा पढ़ने में ही सन्तुष्ट है:-

"अठ नीं पढ़गी, दस्स नी पढ़गी
एयु दी पंज करा मेरे बावल !
मिंजो वी पढ़ने दा चा, मेरे बावल !
मिंजो वी पढ़ने दा चा।"

यह लोक-साहित्य सामाजिक बुराइयों को हटाने, परिश्रम करने, सन्तुष्ट एवं सुसंस्कृत जीवन व्यतीत करने पर बल देता है। 'सत्त भैणां दी कथा', 'ऐंकलुए दी कथा,' 'मोतीरामे दी कथा' हमें यही उपदेश देती हैं। 'लोहड़ियों' में अपनी ही लय है, अपनी ही विशुद्धता है,:—

"बत्तरिया बत्तारा, बत्तार से !"

* * *

या हो—"जट्टी मुट्टी घेरनी, जट्टा ने नी छेड़नी।
जट्ट बड़ा गुआर, जटिया लई गेया लुआर।"

* * *

या हो—"काछपुरू, भई, काछपुरू !

काछुरू ते भ्राए थे !
नौ सौ तीर मंगाए थे।"

मितव्ययी व्यक्ति सदा सुखी रहता है :-

"थोड़ा थोड़ा खांहगे,
तां फैरी चुल्हे गे जांहगें।"

एक विवाह-गीत में वधू वर से आग्रह करती है कि वह 'सिगरट' पीना छोड़ दे। यह बुरी बात है :-

"सिगरट दा पीणा छोड़ बनरे,
बन्नी कागदा भेजे।
घटी जांदी नयणा दी जोत बनरे,
मत पिया करो ।"

परिश्रम करने से क्या नहीं हो सकता ? सब कुछ हो सकता है :-

"कतिए पिंजिए करिए खेयो,
तां घूघा राणा घघरी देयो।"

यह नहीं कि "कमाणे जो तापूदे, कन्नै खाणे जो मुंह बाकूदे।"
और बारम्बार सोच रहे हैं:-"घरो ध्याड़ेया, मिल भाड़ेया।"
कितना अच्छा उपदेश है (इस युग में):-

"अज्ज परोहणा, कल पच्छा, परसूं घरा जो जांदा अच्छा।"
"खादा खाण-कुखाणा, इस ते भुक्खे भले।"
"तड़कं बुड्ढी सड़कं।"

व्यंग्य का व्यंग्य, और उपदेश का उपदेश :-

"नक्का ते चलेया सीहम, बोलदा ध्याणी मीम।"
"अंघीं नी त्राण, बौहड़ी बखाण।"
"सेहडू अपणियां भींगणां ते आपी वतरैहदा।"
"दरया दा उंहूंग, कनें लई गई पूंहूंग।"

श्वेत धौलाधार की गोद में अठखेलियां करती इस सुन्दर वादी में जीवन प्राय: कठिन, है, एक चुनौती है। ऊंचे पहाड़, गहरे नाले, पथरीले रास्ते जहां भाव भरे मन को लुभाते हैं वहां जीवन में अनेक संघर्ष तथा समस्याएं भी लाते हैं।

परन्तु पहाड़ी लोग इनका हंसते-हंसते मुकाबला करते हैं। जब आग के पास बैठे किसी व्यक्ति को धुंआं लगता है, तो कहा जाता है "अवो ! तू सस्सू जो बड़ा प्यारा है।" वह तभी हंस पड़ता है और धुएं की तनिक भी परवाह नहीं करता। क्या यह (छोटी सी) कहावत यहां के लोगों के उत्साहजनक तथा आशावादी दृष्टिकोण का प्रतीक नहीं ?

देवी-देवताओं की इस सुरम्य घाटी में लगभग प्रत्येक गांव की अपनी देवी अथवा 'गूगा' है। यहां कई लोगों को भूत, चुड़ेल भी लग जाते हैं, 'ओपरे' की कसर हो जाती है। 'पहाड़ियां' तथा 'खुआजा' की पूजा होती है। कृष्ण-भक्ति धारा तथा राम-भक्ति धारा के दोनों रूप यहां मिलते हैं। जन्माष्टमी को गांव-गांव 'डोल' पड़ता है; रासें होती हैं। वधू को कहीं 'सीता' तो कहीं 'राधा' कह कर पुकारा गया है। एक गीत में इस प्रकार से कहा गया है :-

"सीता अव्वल कुड़ी,
ब्याहणे नूं जी करदा।"

एक विवाह गीत में लड़की अपने पिता से इस प्रकार से प्रार्थना करती है :-

"पिता ! सस होवे कुशल्या कि सोहरा दशरथ होवे,
पति होवे महाराज कि छोटा देवर लक्ष्मण होवे,
साथ चले हनुमान कि लंकापुरी संग चले।"

किसी प्रदेश में प्रचलित भूत-प्रेतों की कहानियों तथा गप्पों में भी वहां के लोक-जीवन की एक झलक मिलती है। यह एक ऐसा चित्र है जो लोगों की मान्यताओं को सरल अपितु लोक-प्रिय ढंग से प्रस्तुत करता है। कांगड़ा वादी में कैसी गप्पें चलती हैं ? एक गप्प है 'छ्याल देई देणी' जो हरयाणा गांवों में प्रचलित 'मैं डूबी जाणा' से मिलती है तथा एक प्रसिद्ध गप्प है :-

छेड़ सुनी थी—

कोई गपौड़-संख था गलाणा लगेया "मैं वीह हत्थ लम्बा सरप दिखेया।" कुन्नी बोलया-"मौआ झूठ कजो बोला दा ? वीह हत्थ लम्मा सरप बी कुती होया।" "नई ओ भाऊ ! था। बड़ा गनीअर। दस हत्थ तां जरूर था"। फिरि दुआ बोलेया "अरा! दस हत्थ भी कुती होंगा। कजो टका दा गप्प।" तां सह आदमी पंज हत्थां गास आई गेया। गल्ल क्या, इयां घटदा गे। खीरा च गलाणा लगेया "अहुं ! तां उतांह किछ छेड़ सुणी थी।"

एक और 'गप्प, बड़ी प्रसिद्ध है वह है :

कुलफियों वाली ठण्ड—

चार गपौड़-संख कुती कट्ठे आई बैठे। लगे वैहसो बैहसियां गप्प टकाणे। पहला बोलणा लगेया, अखैं "मेरे दादे दें जमानें इक बरी बड़ी ठण्ड होई। लोक दो-दो रजाइयां ओढीनें सुत्ते। पर कुती ते, फिरि बी सीता ने गट्ठ बझी

गई । दुआ गपौड़संख बोलेया "तेरे दादे दे जमाने क्या सीत होया मेरे दादे दे जमाने जे स्याल उतरेया, लोक बछाणा च कांगड़ियां लई कन्ने ई सई गये ? फिरी बी ठण्ड लगी।" त्रीया गपौड़संख एह सुणी नें झट्ट बोली उठेया : "ग्ररा तेरे दादे दे बगत क्या ठण्ड पई ! मेरे दादे दे जमाने दी गल्ल सुण, देई ठण्ड पई, देई ठण्ड पई के जाहलु लोक मैंहसां दुंहदें थे, तां दुधा दी बजाय कुलफियां निकल दिया थियां।" चौथा गपौड़ संख ढूणमढूण होई सुणदां रेया । हुण बोलेया " ग्रो ग्ररा, क्या बोलदे तुसे! सुणा ! मेरे दादे दे जमाने देई ठण्ड पई के मेरा दादा कुसी ने गल्लां था करा दा । सह गल्लां ई जम्मी गेइयां । कुती धुप्प निकली, सह पिघलियां, ता ग्रग्गें गल चल्ली "।

इसी प्रकार से "तुक साहित्य" का ग्रपना ही स्थान है। ग्राज भी कई एक ग्रामीण मिलते हैं जो "तुक-विद्या" में पारंगत हैं । सब बातें तुकों द्वारा करते हैं। इन तुकों में चाहे कवित्व ग्रधिक न हो ग्रपितु प्रभाव इनका बहुत होता है । कई 'तुक' तो 'प्रैण' की तरह सीधे हैं ।

बाल-लोक साहित्य में ग्रनूठी ही सरलता सार्थकता एवं स्वाभाविकता होती है। यहां कोई मिलावट नहीं । कोई कृत्रिम भाव नहीं होता । कांगड़ा-बादी में बच्चों में इस प्रकार की खेलें प्रचलित है :—ग्रन्दरली कनें बाहरली, समुन्दर टापू, छूहण-छुग्रारी, ढुंचे, बांटे, गुल्ली-डण्डा, टमक, चाला, उच्चण-गिट्टी, झोजे-झांइएं ग्रौर झाई-मांई। इन्हें कोई खेलने को कहता नहीं । बच्चे स्वंय ही इन्हें चुन लेते हैं, इकट्ठे हो खेलना ग्रारम्भ कर देते है । यह व्यायाम का व्यायाम तथा मनोरंजन का मनोरंजन—कुछ एक खेलें लड़कों की हैं, कुछ लड़कियों की । कुछ में दोनों भाग ले सकते हैं ।

यहां कई लोक-लघुकथाएं बच्चों में सुनने में ग्राती हैं । मुन्नु, मुन्नु कन्ने काहला, मीनकुए दी कथा, चुड्या दी कथा, पदीनुए दी कथा तथा ऐंकलुए दी कथा विशेषतया प्रसिद्ध हैं । ये झरने के समान ताज़ा तथा निर्मल हैं । बच्चों में प्रसिद्ध कहावतें भी सुनने योग्य हैं:—तेरी सीगी दो राणियां, मैं, तू, पारलेयां दी नूंह, बुहलेयां दा डैम्फा। चूसे-मूसे बड़े लफन्दर, तुम बात करो हम सुनते ग्रन्दर। चूइए, चूइए! चूग्रा कुतु गौरा? जाणें मेरी पौरड़ी, पुछड़ लम्मा पौऊरा। चलो चलाणी, भेडां पाइयां गाहणी इत्यादि । इनकी तान, संगीत देखे बनते हैं :—

उक्कड़ दुक्कड़ भंबड़ भौ,
ग्रस्सी नब्बें पूरा सौ ।
सौ कलोटा तित्तर मोटा,
चल मदारी पैसा खोटा ।
खोटे दी खटाई भई,
मैं भी खादी, तैं भी खादी,
खाने वाली भूखी चुप्प !

एक ग्रौर उदाहरण देखें:-

एलु मेलु, गुड़ा दा ढेलु,
मारेया फट्ट, रड़ाया छेलु।

पहेलियां बच्चे शरद् ऋतु में प्रायः सुनते तथा सुनाते हैं । इनमें कितना संगीत है कितनी सार्थकता है ?

ग्रौरी भई ग्रौरी,
मुण्ढा साढा टौहरी ।
तुड़का लाया ग्रोबरीया,
तां छेड़ सहजोई बोढ़ी । (हुक्का)
इतनी क छोकरी, मटक्क देयां नां ।
बे माए टोकरी, में चिक्का जो जां ॥ (चिलम)
चार फटीयां, चार सिंघियां, चार सुरमांदाणीयां ।
झंग तोता बोलदा, कल फौजां ग्रौणियां ॥—(विवाह-बेद)

बच्चों के ग्रनुसार पक्षी भी विशेष बातें करते हैं । तित्तर बोलता है—भग-वान तेरी कुदरत! एक पक्षी बोलता है 'घाट का कपड़ा ढाई गज,' एक ग्रौर बोलता है—'दुध तत्ता ! दुध तत्ता।' घूघी बोलती है—घू घू घूह, घूघू घूह। एक पक्षी ('चेपु) बोलता है—'झंईं चेपु, कच्ची होई, उठो लोको ब्याग होई'। एक पक्षी गाता है 'टोटरूग्रा बच्चा ! बड़ पूरे ! पूरे ।'

इस प्रकार के लोक—साहित्य को पूर्ण रूप से इकट्ठा करने, प्रकाशित एवम् ग्रध्ययन-करने की विशेष ग्रावश्यकता है । यह कार्य कठिन ग्रवश्य है ग्रपितु ग्रसम्भव नहीं है। इस क्षेत्र में शोध—कार्य करने पर हमारी संस्कृति के ग्रमूल्य तत्व सामने ग्रा सकते हैं ग्रौर ऐसे संकलन पढ़ने के लिये भी बहुत रुचिकर होंगे ।

वस्तुतः कांगड़ी लोक-साहित्य में यहां के जन-जीवन के विश्वास, मूल भावनाग्रों एवं मान्यताग्रों, सामाजिक एवं ऐतिहासिक परम्पराग्रों के दिग्दर्शन होते हैं । यह वह स्वच्छ एवं जीवनदायक जल-धारा है जो सदा बहती रही है बहती रहेगी । यह लोक-साहित्य प्रचुर है, परिपूर्ण है, विशुद्ध है, श्रेष्ठ है, सर्वकालाप जीवित है । यह हमें बारम्बार पुकार पुकार कर कहता रहेगा, स्मरण करवाता रहेगा:—
"तुम हो महान ! तुम सदा हो महान !"

—हिमाचल विश्वविद्यालय,
शिमला ।

प्वाड़ा झांखों अजबा

–विद्यानन्द सरैक

यहां के गगनचुम्बी पर्वत, पाताल-भेदिनी छोटी बड़ी नदियां, हरित-कोमल लत्तिकाओं से लदे सजते संवरते वन—इस प्रदेश की शोभा व सम्पदा हैं । अपने आप में यह एक तथ्य है कि यह देव-भूमि थी और है । इसका सुन्दर चित्र त्याग, तप, वीरता व सतीत्व की कहानियों और प्राकृतिक सौन्दर्य से सदा प्रतिबिम्बित रहा है जिसकी पावन-स्मृति लेखों व अभिलेखों में ही नहीं अपितु पत्थरों व धातुओं की असंख्य मूर्तियों में सुरक्षित है । यहां के आकर्षक व सुन्दर गीत हारों, प्वाड़ों, बारों, लामणों, झुरियों, नाटियों, भारनों तथा पांजड़ों आदि के विविध रूपों में यहां की ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण प्रदान करते हैं । इनमें से प्वाड़ा दीवाली जैसे पर्व में गाया जाने वाला ऐतिहासिक गीत है । 'प्वाड़ा' शब्द का शाब्दिक अर्थ सांचा है, यहां गीत एक ऐसे विवाद को स्पष्ट करता है जो पीढ़ी दर पीढ़ी दो वर्गों या गावों में काफी अर्से से चला आ रहा हो । झांखों अजबा के प्वाड़े के पीछे भी एक लम्बी पृष्ठभूमि है जिसमें झांखों के सती हो जाने और अजबा की वीर गति होने की कहानी, दो गांवों डिब्बर व कुफर के आपसी वैमनस्य के निबटारे के बाद शैक्षणिक रूप प्रदान करती है । गीत में पहरावा, सती-प्रथा, ग्रामीण युद्ध-विधि, शस्त्र इत्यादि विभिन्न बातों का वास्तविक चित्रण है । अजबा देश-भक्त युवक और झांखों उसकी धर्मपत्नी है । बाकी गीत में क्रम-बद्ध वर्णन है । प्वाड़ा नकारे की ताल में डंका लगा कर गाया जाता है । गांव कुफ्फर और डिब्बर पझोता सिरमौर के दो गांव हैं । इन दोनों गांवों के ग्रामीणों के मध्य पीढ़ियों से विवाद चला आ रहा था । बताया जाता है कि सतरह सिर कुफ्फर के योद्धाओं के डिब्बर के लोगों द्वारा काटे जा चुके थे और अठारह सिर डिब्बर के योद्धाओं के कुफर वालों ने काट लिए थे । बदला अब भी जारी था । इस प्वाड़े का आरम्भ इस तरह हुआ, कहते हैं:—

के जाए रे कोलेओं पाबो लागी आटणे शणाई लागी डूमो री जातो बे ।
कुफ्फ्रे बेठेओ खुमले लेऊ लागी प्वाड़े री बातो बे ।।
टीरो पान्दे के बुधमो टोपे गोरूएँ न के सींओ रे ।
हाखरे सेबेओं बिलमें गोरू, हुन्दी डिब्बरे खे न न्हीओं रे ।।
बोंदा भाट झांवटा दोओ थागो कलीणो रा घाण्डे बे ।
जुम्बा आज के माओ ला जुओ खे बारो रपईए रा होला डण्डे बे ।।

ऊपरोक्त पंक्तियों में युद्ध आरम्भ होने के कारण को स्पष्ट किया गया है । कहते हैं कि कलेओं पाब में रूई पींजने का कार्य लगा हुआ था । शणाई गांव में डूम देवता की जातर मनाई जा रही थी । उधर कुफर में पंचायत गांव के प्रबंध पर विचार कर रही थी किन्तु लेऊ जो सब गांवों का देवस्थान है, में प्वाड़े की चर्चा चली हुई थी । क्योंकि लेऊ वालों के पशु दूधम की धार पर सीमा पार डिब्बर के कब्जे में चले गए थे इस पर झांवटा नामी पुजारी ने देवता की घण्टी उठा कर सब गांवों में जा कर युद्ध का आह्वान कर दिया । घंटी की ध्वनि देवाज्ञा मानी जाती थी, यहीं से युद्ध की तैयारी होने लगी ।

छोए बीशो रा तेरिया मशीवरा ओजबा पीरणो गोआ जाएरे ।
घोरे आओ आण्डा ओजवा झावठे शठमूई गे ओंरजो घाले लाएरे ।।
छबीशे तेरिआ मशीवरा लोंई मटलोड़ी रा के कोले रे ।
भेखलू जाणी मगलू जुझो री पातरे के न होली रे ।।
हावेआ बोलू कनेईता ओजबा छोए बीशो रा मोड़ो बे ।
आण्डा आओ ओजवा शठमूइ गे देऊ बाकरे री हालो बे ।।

120 चूल्हे वाले चार गांवों के सब नौजवान तैयार हो गए किन्तु अजबा नामी युवक समीप के एक गांव पीरण में मेहमान गया हुआ था । अजबा भौड़ बहादुर नायक था । उसकी अनुपस्थिति खल रही थी । पुजारी झावटा काली माता के पास अर्ज करने लगा—हे मां यदि अजबा वापिस घर आए तो दो बकरे बलि कराऊं । गांव के हरिजन-राजपूत सब मिलकर अपनी कुल मर्यादा की सुरक्षा के लिए कफन बांध कर तैयार हो गए । भेखलू, मंगलू, गोकलू—अजबा के अन्य साथी सब उपस्थित थे । ये सब युद्ध में दक्ष थे और कई तरह के पैंतरे बदलना जानते थे ।

धारो गाए कुफरे तूरिए बाजो के ढोलो बे ।
ढारो जाणी बाजगे वाजो ढोले रे न बोलो बे ।।
आण्डा गाव से कुफरे रा पाण्डा पिरणो चीशो रा नाला बे ।
जुझदा धाला खोशिया दीता धारो मोती री झोआला बे ।।
नाले आगे एआ ओजबा पीरणे, ढोला धारो मोती री शुणा बे ।
बोधो रे आए गोरणे जिओ दा गिरा रोष के दूणा बे ।।

प्रस्तुत बिम्ब में युद्ध में जाने से पूर्व की तैयारी का वर्णन हैं । तूरी यहां की गाने बजाने वाली जाति है । उन्होंने कुफ्फर के पीछे रोंदर ताल बजाया जिसे ढोला कहते हैं । और ग्रामीण योद्धाओं ने (शवाला) ललकार कर शत्रु को सचेत किया । इस सारे क्रम को अजबा नामी योद्धा पीरण गांव के पानी के पास सुन रहा था । यहां एक बात स्पष्ट करना जरूरी है कि हमारे कई लोक ताल हैं जो विभिन्न परिस्थियों में पास पड़ोस तक सूचना देने का माध्यम हैं, जैसे वैऊल ताल बालक (लड़का) पैदा होने का सूचक है । जंग ताल शादी होना बताता है, 'सूरजन्हाण, छतर ताल' देव यात्रा, और 'फाट, ढलदा, छतर' आदि मृत्यु के समय बजने वाले ताल हैं । रथेवला व ढोला ताल, रौद्र ताल युद्ध व बीशू

में बजने वाले ताल हैं। इस तरह सहज में ही पास पड़ोस तक किसी भी घटना की सूचना पहुंच जाती है—

एकी हाथे न्हीश्रा टोकणा पिरणो रोबो गोरणे गोए श्रावे रे।
शाशुऐ बोलू शउरेश्रा श्रोजबा गोश्रा घोरो खे जाए रे।।
शाशूऐं बोलू काणिए मुखे बेर न जाणी पाए बे।
ढोला शूणा धारो मोती री जुझदा डेवा मेरा वाए भाए बे।।
नाथू कीर बोलो श्रोजबे खे एके दिन रोबो होए बे।
ऐवड़े डेवे जंवाइयां तोबड़े चेली खा एश्रो जाए डेवे बे।।

ऊपरोक्त पदों में अजबा की देश-भक्ति स्पष्ट की गई है। ज्यों ही उसने रौद्र ताल (ढोला) सुना वह आग बबुला हो गया। उसने अपने सास-ससुर से घर जाने की आज्ञा मांगी। उसने कहा–अब मुझे देरी न करना, मेरी पूरी विरादरी युद्ध के लिए जा रही है। नाथू कीर जो अजबा का श्वसुर था, कहने लगा—बेटा! रोटी (चेली) खा कर जाना। 'चेली' सुबह का खाना कहलाता है—

पांजिया बोलू बेटेया उबे भीड़े भूई लो के गाचे बे।
वैरा तेरे मितरो श्रोजबा पाण्डा डेवो कुफर खे, के साथे बे।।
कील बुणी बोंइशो री के गुहलियों रे के श्रोड़े बे।
श्रोजबा पांजे चाले हिठो मितरो जेरे कावले न, घोड़े बे।।
घोड़े जितणे खे होए धोलका सेरे गोए कोलेश्रो री श्रावे बे।
सेरे पान्चे एत्ता कोले श्रो राम रमइया गोश्रा होए बे।।

—अजबा ने सुबह का खाना नहीं खाया। अजबा के श्वसुर ने अपने बेटे पांजी को 'भुइल गाचे'–एक कमर कसने का वस्त्र बांधने का आदेश दिया। इसे गात्रा भी कहते हैं। इसमें तरकस और डागरू, कंडासा लटकाए जा सकते थे—और अजबा के साथ जाने को कहा। वे दोनों रिश्तेदार काबली घोड़ों की तरह चलने लगे। थोड़ी ही देर में वे कलेश्रो गांव में पहुंच गए—

तेथेश्रो रा जाणी छुटका कोलेंयों थाणी दा के गोश्रा श्रावे बे।
कोलेयो री जाणी कनेतणेऐ भोला घाला नेशना लाए बे।
श्रोजबेश्रा बोलू जेठिया कोंई गोश्रा पाछको खे न रोए बे।
टाटी तेरी छेड़ू छोटू गावों री गोई जुझदी न डेवें बे।।
चालदे शोटे वीते चिलमो दे पाबो गोश्रा थाणी दा न श्रावे बे।
चाम्बे री जाणी कनेतणेऐं भोला घाला नेशणा न लाएबे।।

केलेयों गांव की स्त्रियां अजबा से सुखसान पूछने लगी और साथ गम्भीरता पूर्वक यह भी प्रश्न कर रही थी कि—तू नायक शिरोमणि योद्धा हमारा पूजनीय जठ कहां पीछे रह गया? तेरे छोटे भाई बुजुर्ग सब युद्ध को चले गए हैं। गांव

की, कुल की मान-मर्यादा खतरे में ह। अजबा तो जोश में पहले ही जल रहा था। वह तम्बाकू भी ठीक तरह से न पी सका। वह पाब गांव होता हुआ चम्बा की घरवाली के प्रश्नों का उत्तर दिए बिना कुफर की ही ओर बढ़ रहा था। उसकी मस्त चाल, जोश, उत्साह से बढ़ते कदम मातृभूमि के प्रति सच्ची श्रद्धा का प्रमाण दे रही थी—

तेथेश्रो रा जाणी छुटका कुफरे गोश्रा रोणो दा के श्रावे बे।
झाखोऐं जाणी बाठणिऐ भोला घाला नेशना न लाए बे।।
नोगो दो जाणी झांखोए शिगो लोवो रोणो खे श्रावे बे।
कूम दे लोए झाखोए झिड़के घाले श्रोजबे न देए बे।।
झांखरेऐ बोलू बाठणे कालके रोणो री रोई श्रावे बे।
गोरणे श्राए रोशो रे छांए न मुइवें तू वे लाए बे।।

उपरोक्त पंक्तियों में अजबा के कुफर पहुंचने का वर्णन है। वह जब कुफर गांव के मध्य भाग में बने चबूतरे पर पहुंचा तो उसकी धर्मपत्नी परम सुन्दरी झांखो तोंग पर से चौपाल को उतरने लगी, उसकी सौन्दर्य से ढकी भावनाओं से भरा यौवन अपने प्रियतम से कुछ कहने की आकांक्षा लिए था। उमड़ते अरमानों ने अन्धा बनाकर उसे पति से लिपटने को बाध्य कर दिया। परन्तु अजबा ने दूर ही रहने को कहा। अजबा का मन जो झांखों के प्यार का मन्दिर था, आज रणचण्डी का मन्दिर था। स्नेह, ममता, प्यार उग्र रूप धारे लहू में ऊष्णता धारण कर चुके थे। जाति की मर्यादा बचाए रखना ही उसका वांछित कर्तव्य था—

रातोके जाणी सुपने साईयां देखा नोखेश्रा न चाला बे।
लावणो जोल घाघरे रे मेरे तेरी देखा खुटिऐं लोऊ रा नाला बे।।
रातो के जाणी सुपने देखियो खोटेश्रा न के खोटो बे।
जांजा लागो सोजों साखो रा भाई लागो बापो रे न भोटो बे।।
ऊबे बीउजें झांखोऐ संणिऐ देऐ डांगरू के कनेरू बे।
झालो जे लागेश्रो मूंइदे पोरी डेवी जुझदी, टाटी छेड़ू बे।।

इन पंक्तियों में झांखो अपने पति से कहती है, कि ऐ प्रियतम! रात को स्वप्न में मैंने खतरनाक घटना देखी है। मेरे घघरे की किनारी (लावण) जल गई और आपकी जांघ से लहू निकल रहा था। आंखों की गहराइयों ने बादल उभारे और आंसुओं की बूंदें सुर्ख गालों का सहारा ले धड़कते सीने पर बरसने लगी। उत्तर में अजबा ने कहा–प्रिये! रात के स्वप्न में तो भाई बहनों के इलजाम लगते हैं। यह तो असत्य है। तू उठकर डांगरू (कंडासा) और तीर-कमान दे मैं युद्ध-स्थल की ओर जाना चाहता हूं। मेरे गांव के छोटे-बड़े हवेली पर जान रख, घरबार छोड़कर चले गए हैं। मैं प्रणय के मस्त तराने गा रहा हूं, यह शोभा नहीं देता।

ग्राशू रे होए बोरखा जिवटा झीडेग्रो ऊवा न्हीग्रा बे।
धोणू किग्रो कनेऊ हाथो दे डांगरा ग्रोजवे के बे दिया बे।।
कुफरे रा जाणी छटका धारो गोग्रा मोती री न ग्रावे बे।
देवे दलेंए री थी केलटू घावो गोग्रा डागरू रा के लाए बे।।
पोल के जाणी घावो दा लागा लोऊ रा के नाला बे।
धारो निकले दुधो रे होग्रा बोदका के न चला बे।।

झांखो ने ग्रांसू बरसाती ग्रांखों व थरथराते हाथों से तीर–कमान ग्रौर (डांगरू) कंडासा पति को दिया । ग्रजबा सीधा मोती की धार होता हुग्रा दुधम के स्थान पर पहुंच गया। वहां उसने गुस्से में देवदार पर प्रहार किया । वह ग्रपने जोश को सम्हाल नहीं पा रहा था । कहते हैं कि पहले प्रहार से लहू ग्रौर दूसरे से दूध की धार बही । यह देवेच्छा थी, यह वन देवी दलेयां का सुरक्षित वन था—

तेथेग्रो रा जाणो छटकां डिव्बरे गोग्रा नाले ग्रागे ग्रावे बे।
छोए बीशो रे थेऐं मशोवरे थेऐ बादेग्रा दाए भाए बे।।
छोए बीशो रा मशोवरा तोई मटलोड़ी रे कोले बे।
हून्दी काटो केलेग्रों खोवरा बोईरी ग्राफिए के होले बे।।
भोड़ो बोलो से ग्रोजवा देवे री केलेग्रों न काटो बे।
थोड़े भितरा बोएरे कोठो कोरो ग्रागे लाणे खे न साटो बे।।

ग्रजबा सीधा डिव्बर के पानी पर पहुंचा । यहां पर सारे कुफर के ग्रामीण डिव्बर गांव के देवदार वन को काट रहे थे । ग्रजबा जो नायक (भौड़) था, ने ग्रादेश दिया कि सब गांव के चारों ग्रोर घास फूस इकट्‌ठा करो ताकि थड़ा (किला) में ग्राग लगाई जा सके। ग्राज भी डिव्बर गांव में उस थड़ा–किले के खण्डहर हैं । लोग इन थड़ों–डीमों में इकट्ठे होकर ग्रपनी सुरक्षा करते थे । ग्रौर दुश्मन पर तीर कमान का प्रहार यहीं से किया करते थे । खाद्य–सामग्री, पानी, लकड़ी इकट्‌ठी कर किले के भीतर पूरा प्रबंध हुग्रा करता था । ग्राज भी इस किले में एक योद्धा दिलमी था बाकी सब गांव के बच्चे, बूढ़े, ग्रौरतें ग्रात्म–सुरक्षा के लिए एकत्रित थे । बाकी योद्धा पास के गांव ड्रोल को गए हुए थे—

थोड़े पाछोका था दिल में कोरो दलें री नेवी खे ढालो बे।
गोड़े लागो ग्रोजवे दे देया गादे बाकरे रो होलो बे ।।
देव बोलू म्हावशनिएं तेरो उपरी के बोलो बे।
डोले लागो ग्रोजवे दे चांदी री गाचिए देया ढोलो बे।।
धोणू ताणें दिलमिऐ कनेरू घालो मोरी दो लाए रे।
ग्रोजवे री जाणी खुटी दे बशोले ग्रागटू रे गोग्रा पाए रे।।

दिलमी दुश्मन पर कड़ी नजरें लगाए उस समय ताक रहा था, उसने ने ग्रजबा पर तीखी दृष्टि डाली । फिर ग्रांखें बन्द कर कुलदेवी दलेयां की ग्राराधना की ।

तीर कमान पर रख कर भरपूर निशाना साधा । मन ही मन बोलने लगा। यदि तीर ग्रजबा को निशाना बनाए तो बकरे की जोड़ी ग्रौर एक चांदी का ढोल भेंट करूंगा । दैव–योग से विष भरा तीर ग्रजबा की टांग में लगा । इस विषैले तीर को 'ढोले' कहते हैं । ग्रजबा मूर्च्छा खाकर जमीन पर गिर पड़ा—

डोब ऐग्रा ग्रोजबे दा घाला सुजका न कोरे बे।
ग्रोणे गिरे कुफरे खे ग्रोजवा पेखो बानो रे जोड़े बे।।
थागेग्रो ल्हेवा ग्रोजबा ऐ ग्राऐ तालो कुफरे ग्रागे बे।
दरेणी जाणी जठेणी री कोसरे पोता गोग्रा कुफरे न लागे बे।।
एकी हाथो दो चिलमों दूजे छाए रा के लोटा बे।
डोबएंग्रा ग्रोजबे दा पोड़ा ढोली रा के झोठा बे।।

सब ग्रामीण ग्रजबा को होश में लाकर लश्कर मोड़ लाए। वे लोक-नायक का मरना या जख्मी होना हार समझते थे । कन्धे पर उठाकर ग्रजबा को ज्यों ही गांव के पीछे, धार पर लाए गांव की ग्रौरतों में सनसनी फैल गई । झांखो समझ गई कि मुझ पर ही विपत्ति ग्राई है । वह छाछ की लुटिया ग्रौर तम्बाकू ले लश्कर की ग्रोर बढ़ी । कल्पना सत्य निकली—

झांखो भोरो ग्राखोटी दे साईयां तम्बाकू दे शोटो बे।
सातू रो पींन्वों सतानटो थोड़े देन्दा तम्बाकू रे न शोटो बे।।
रोए न बाठणे झांखोए देए कांचणो न खोए बे।
खोड़ो रो चूटो कुम्बरो एनी खे न तू रोए बे।।
ग्राखे रे भोरे डावरो जीग्रो दा थेग्रा बोग्रालो रे ।
बोग्रालो चोटिया हिक्टू ग्राशू रे भोरिए नालो रे।।

झांखो चीख पड़ी जब ग्रजबा को कन्धे पर बेसुध पड़ा देखा। टांग से लहू चल रहा था । झांखो के गोरे गालों पर नयन सावन बरसाने लगे । झांखो ने सत्तू खाने का ग्राग्रह किया किन्तु सत्तू कहां! यहां तो रोम रोम में ज़हर भरा था । ग्रजबा ने ग्रांखें खोलीं तो झांखो की ग्रनुपम सुन्दरता से सजी जवानी में दुःख से बिलखती ग्रात्मा प्रतिविम्बित हुई । उसके कांपते होंठों से यह शब्द निकले—"रो मत प्रिये! ग्रपना कंचन सा शरीर ग्रांसूग्रों से न भिगो ।" दिलासा देते हुए वह ग्रागे बोला—"तू तो पगली है! मुझे तो 'कुम्बर' (घास का कांटा) लगा है । " झांखो के होंठ, जहां मुस्कान शोभित रहती थी जिसकी लाली उषा की लालिमा को भी फीका कर देती थी; ग्राज कुछ कहने तक के लिए लाचार थे । वह फिर बोली–सांई! (पति) तूने खाया नहीं, सत्तू तो खा । सत्तू–मक्की चोलाई, जौ, कांगनी का भूना हुग्रा ग्राटा होता है जो 'छाछ' लस्सी के साथ खाते हैं । ग्रजबा बिना कुछ कहे बेहोश हो गया । झांखो की ग्राशाएं–उल्लास जैसे गहराई में दम तोड़ कर डूबने लगे हों—

अजबा के शरीर में ज़हरीला तीर दर्द दे रहा था, मन में सौन्दर्य-प्रतिमा झांखो का प्यार उमड़ रहा था, वात्सल्य से भरे नयनों में धीरू, टीरू, नामक बेटों के प्रति नीर छलक रहा था, किन्तु धैर्य का सहारा लेकर वह अपनी पत्नी को सांत्वना दे रहा था कि-यह तो मामूली घास का कांटा (कुम्बर) टूटा है । अपनी कंचन समान देह को क्यों दर्द का दाग लगा रही हो! ऐ झांखो! तू रो मत । बोल हैं—

रोन्वे लागे झांखोऐं बाठणे देह कांचणो न खोए बे ।
खोड़ो री बुटो कुम्बरो एनी खे न जाए रोए बे ।।
नहालटूआ जाणी चमारटुआ होला धोरमो रा भाएं बे ।
मेरी जाणी काजिऐ पाच्छा आणी कोटो खे न जाए बे ।।
दरोटू न्होऐं जा ठाकरो खे तूबे धागले न लाए बे ।
लाए बोलू ठाकरों खे जुठा होला जुठेआ न आवेबे ।।
जोलो दीतो धागलेरो दरोटू बाटो रे नड़ाए बे ।
घोड़े जोतणे खे होए पोलका ठाकरो गोआ कुफरे आवे ।।
बाटे छाड़े अोजबे री खुटी दे बिषो रे ड़ाले न बाशे बे ।
बिषो रे टाले होले नोंई बाकरे न हाशे बे ।।
हाशे बोलू झांखो ऐ दादिऐ गाणा बाजणा न शाणाऐं बे ।
बातलो पोड़ो ती अोजबे खे मुबे धोखे दे न लाए बे ।।

अजबा की सांत्वना के पश्चात् झांखो ने न्हान्टू नामी हरिजन को बुलाया और उसे चांदी के 'धागोले' कड़े देकर रतेश राज्य के राज-वैद्य को बुलाने भेज दिया । कान से सोने की मोटी बालियां उतार कर ठाकुरू, वैद्य को नज़राना दे दिया । इन बालियों को दरोटू कहते हैं । न्हान्टू से आग्रह किया कि ठाकुरू को शीघ्र लाए । न्हान्टू देर न कर तत्काल वैद्य को बुला लाया । वैद्य ने विषैला तीर टांग से निकाल कर गीत, वाद्य सुनने का परहेज़ बताया । औषधि देकर राज-वैद्य प्रस्थान करते कह गया कि परहेज़ न रहने पर अजबा का जीवन खतरे में है। साथ देवी को बकरी चढ़ा कर वैद्य कोट को रवाना हो गया, बोल हैं :—

घोड़े जेतणे खे होए पोलका कोले बावली दे गोआ आवे बे ।
भाएं मूआ सोजो रा कोले खोबरा गोआ लाए बे ।।
सावे पांजो रे कीऐं बलोचे तोबे लोवो बावली खे जाए बे ।
घोड़े जेतणे खे होए पोलका काट लोवे बांदली बजावे बे ।।
चोवशो ढोलों दा बंबंडा ठारो करनाले वा धेना घाला लाए बे ।
बी दा बेठा था अोजबा डोब गोआ कानीं दा न गोआ आवे बे ।।
घोड़े जेतणे खे होए पोलका अोजबा गोआ मोरे बे ।
घा दीते मटलोड़ी खे पोता लोआ सोजो साखो खे कोरे बे ।।
के बोलो रे कोलिआ बोलू जायरूआ तां बावली पोड़े जाणे बे ।
अोजबा मुआ हाबे रा खोबरा दे जाए तू मामें बे ।।
झांखो रे पोड़े बाठणेरे के कनोले दे टालो बे ।
डोब एघा बाचीवा पोड़ी आशू री के छालो बे ।।

अभी औषधि लिए कुछ ही घण्टे बीते थे कि बांदली नामक पड़ोसी गांव से अजबा के रिश्तेदार मरने की खबर ले कर एक व्यक्ति पहुंच गया । झांखो ने सवा पांच गज़ का कफन देकर घर के व्यक्ति को वहां रस्म में शरीक होने भेज दिया । अजबा धूप तपने तोंग पर बैठा था । रिवाज़ के मुताबिक अठारह ढोल करनाल में बाजा बांदली में बजाया गया । सिरमौर, जुब्बल, बलसन, क्योंथल में मरने पर बाजा बजाया जाता था । कुछ ही वर्ष पूर्व यह रिवाज़ खत्म हुआ है । फाट, ढमाल, छतर, राम कड़ी, सोअर आदि ताल मरने पर अर्थी के सामने ढोल के धामे पर बायणे से बजाये जाते थे । प्रभु की कृपा अपार थी कि बाजा सुना ही था कि अजबा को गश आ गया । क्षण भर में अजबा की मौत हो गई । आशाएं निराशा का रूप ले आईं । रिश्ते नाते को मृत्यु-सन्देश-वाहक (खबरू) भेजे गए । झांखो ने यह सूचना घर के सामने 'चौपाल' में सुनी तो वह बेहोश होकर गिर गई । आंसुओं ने सावन-भादों बरसाए । न जाने तत्काल झांखो के चेहरे में मुस्कान उभरी और वह सब दर्द भरी कल्पना को लात मार कर सीढ़ी से ऊपर को चढ़ने लगी । साहस, धैर्य, त्याग के भाव चेहरे से एकाएक उमड़ने लगे। बोल हैं :—

झांखो ऐ लोवो बाठणेऐं उबो लोगो खे न आवे बे ।
चऊ काण्डे री दुर्गे गे अोरजा लोए लाए बे ।।

देवा बोलू कलीणा तेरो उपरी न बोलो बे ।
शोले कोरे आगटे चान्वी री वेये गाचिए ढोलो बे ।।

न्हान्टुआ बोलू चमारटुआ पाण्डे पौड़ न्होउलो खे जाणे बे ।
पोआड़े रे गाई ऐ चनालटू साथी घाले आणे बे ।।

घोड़े जेतणे खे होए पोलका चनाल गोआ कुफरे न आवे बे ।
दूए दिनो एकी राते पोवाड़ा झांखो अोजबे रा घाला लाए बे ।।

पालोकीआ चउ देवठी ठारो खेले खे, साजो जमाणो बे ।
सोते महास्तें बोलो झांखों लाओ मेरे डोले दी कानो बे ।।

इस मुस्कान का कारण था-झांखो का महान निर्णय । उसने मन में दृढ़ निश्चय सती होने का कर, डिब्बर व कुफर गांवों के आपसी झगड़े को सदा के लिए समाप्त करने की कसम खा ली थी । वह अपना बलिदान दे कर दो गांवों की एकता और सच्चे प्यार की यादगार इस प्वाड़े में छोड़ गई, जिसे गाने व रचने के लिए न्होल नामक गांव से एक हरिजन लोक-कवि को बुलाया गया । दो दिन व एक रात थाली पर ताल व नाकारे के ताल में गीत संजोया और गाया गया। अठारह बिरादरी के राजपूत-वंश चार देव-स्थान के कार-करीन्दे एक बड़े समूह के साथ इस सती समारोह में एकत्रित हुए । हज़ारों दर्शक इस अमर प्यार की सजीव मूर्ति के त्याग के लिए गद्‌गद् हो कर पुष्प भेंट करने लगे । झांखो ने अपनी पालकी को अर्थी के पीछे ले जाने का आग्रह अपने देवर, जेठ से किया । बोल हैं :—

आंखे भोरी आशुऐ देखे हुन्दे कुफरे रे सेरो बे।
शुणदी नी शुणदी धीरू टीरू री मेरे लेरो बे।।
कोलिओ बोलू जायरूआ पोरा डिबरे खे जान्दा बे।
दुगलो रे बोले दिलमी खे धावे डोरोलो दो आण्डा बे।
कोलिया बोलू जायरूआ पाण्डा लोए पिरणो खे जाए बे।
नायू बोलू बावे खे कोटले बागो खे आण्डा आवे बे।।
नाथू कीरो रो धीटू पोरे म्हास्ते बे चाले जोले बे।
कीर एआ पीरणो दो बादले जे न ढोले बे।।
डरोले ऐआ डिब्बरू कीआ धारो मोती री मोहाला बे।
मोहाला हुन्दा कोटले खे बादा कोट को चाला बे।।
आगे जमाणो थागो झाखो रो पाछे ओजबे रो मोड़ो बे।।
लश्करो जाणी से माछो रो हुन्दो धारों खे पोड़ो बे।।
जमाणो पोहचू कुफटे कुफरे चुटे न लाम्बो रे।
धीरू टीरू जाणी धागा पाछिएं जमाणो रे न हाण्डो रे।।

झांखो की आंखों से वात्सल्य छलक गया। प्यार, त्याग, तप से आगे ममता ने पर्दा डालना चाहा। धीरू, टीरू दोनों बेटों के आंसू जंजीर डालने लगे परन्तु सच्ची लगन, ऊंचा उद्देश्य, ममता, स्नेह, माया को दुत्कार कर मानो ठुकरा दिया गया हो। झांखो ने सन्देश-वाहक डिब्बर, पीरण को भेज दिए। दोनों गांवों से भारी संख्या में लोग गाजे बाजे से इस सती–यात्रा में शरीक हुए। एक लम्बा लश्कर कुफर से रवाना हुआ। नंगी धार पर हज़ारों लोग इतिहास की इस अमर कड़ी की कल्पना करने लगे कि क्या अगली पीढ़ी भी झांखो की यही तस्वीर देखेगी जो उस समय थी। परन्तु धीरू, टीरू के आंसू तो अपने को निस्सहाय समझ बह रहे थे। भविष्य का अन्धकार उनमें टपक रहा था। यह इतिहास शब्द, वे अबोध बालक क्या जानते थे कि उनका नाम भी अमर रहेगा—

दुगलो रा बोलो बिलमें झूण बादिए ओरजा मेरे बे।
बंठे रोए तोगो दे कीऐ टोलो न हेरे बे।।
जोलणे जिजिए नो झांखोए कोनिए ओखरे तू गोए रे।
बंठे रो पालमे डिब्बरे थाम्मी खे न डोवे रे।।
आणे होन्दें भामटे हां कोणी खे लागे तेरे बे।
विसरो दे न जिजए सातो धोरमो रे वोएणो मेरे बे।।
नाथू कीरो जाणी पीरणो रा-लाओ बेटी आगे शीखो बे।
शुण ओरजा बेटिऐ हाथो जोड़िओ देन्दे भीखो बे।।
तेते भेजमा बेटिए अंता होला कुफरे गाव बे।
सुख पावो लो जीवटे खे होला ओजबा नाव बे।।

दिलमी जिसने कुछ दिन पूर्व, अजबा को तीर मारा था वैमनस्य छोड़ करके सच्चे प्रेम से इस यात्रा में सम्मिलित था। वह झांखो को सती होने से रोकने

के लिए प्रयत्न कर रहा था। झांखो के पिता ने तो इतना कह दिया कि 'कुफ्फर गांव ढूंढ कर अजबा नाम के व्यक्ति से पुनः ब्याह कराऊंगा। बेटी! तू जल मत।' परन्तु झांखो के लिए संसार भर में एक अजबा था जो चल बसा था। उसकी देह के साथ जलना ही उसकी पावन-इच्छा थी। झांखो ने सब को ठुकरा कर आगे बढ़ना उचित समझा। स्नेह, ममता, प्यार., माया, लोभ, लालच जैसे सब सच्ची लगन में समा गए हों। अन्त में सारा लश्कर कोटला बाग में बैठ गया। कोटला का ठाकुर जैराम झांखो के सामने आया और धर्म-बहिन कहकर प्वाड़ा का निर्णय करने लगा। इस लम्बे झगड़े का अन्त यहीं हुआ। झांखो ने तो पहले ही यह योजना बना रखी की थी कि सती होना, इस कार्य की सफलता के लिए बलि-दान था। जैराम को उचित सहयोगी जान कर उसे पंच बना लिया गया।

जैं राम बोलों ठांकरो कोटले रा, भीले जिजिए जौले आए रे।
प्वाड़ा धाटना कुफरू डिब्बरू रा धोरमो घाला लाए रे।।
के लाएरे, पोवाड़ा धाटा कोटले सेरे बागो दा जमाणो डेवो अणूरी सेरे ।।
ठारोओ मूण्ड, गेणे झाखो रो बोड़े टोयले घाले हेरे वे।।
झांखो एं बोलो ठाकरो खे सेरे ओणू री जाणे रे।
भाए बोणा धोरमो रा याले बेओ सौरफी रे के आणे रे।।
कोलिआ बोलू जायरुआ उबो जमाणो तू थागे बे।
चालो माछो रो ढाढसो ओजबे रो मोड़ो आगे बे।।

जैराम ने डिब्बर और कुफ्फर का सदियों का झगड़ा समाप्त किया। 18 सिर डिब्बर के कट चुके थे, सतारह कुफ्फर के। अठाहरवां सिर झांखो का मान कर बराबरी हुई थी और दोनों दल इस झगड़े को समाप्त करने पर सहमत हो गए। आज भी इन दोनों गांवों में रिश्ते नाते हैं। झांखो का बलिदान जैसे बड़ा पक्का कील लगा गया जिसे ज़माना बदलने पर भी नहीं उखाड़ा जा सकता। प्वाड़ा खत्म हुआ। झांखो ने अपनी पालकी और शव अणू की सेर को ले जाने को कहा। गेहूं की लहलहाती फसल झांखो के यौवन को तरस कर देखती रह गई थी। सारा जन-समूह सीधे खेत में बांगी नामक गांव के समीप रुक गया। चिता सजाई गई। झांखो ने पति का सिर जांघ पर रख कर जन-जन को प्रणाम कर प्यार का सन्देश दिया। इस प्रकार महान बलिदान कर अपनी आहुती से वैमनस्य का अन्त किया, बोल हैं :—

के आगे, टीके रे बागड़े सेरे ओणूं री चीता घाले लाए रे।
फुकरो वीते ठारो धेने दे ढोलदो छोतरो छाले बजाए रे।।
आग दे लोए आफिए कनोउले वे की चऊं धूरो खे ढालो वे।
धोतरे बान्दे माटे वसुधर पाए चीशो रे छालो रे।।
शउरेआ बोलू हावेआ छबराला शुणो गोयणो माटे रे।
भाईआ बोलू दिलमीआ प्वाड़ा घाला तुमोरा माटे बे।।

घूंए री गीरीं ढाढसो उड़ा ग्राणे रा न फेऊ बे।
जाजतो दे देवा पिरगुला जकरो खे देऊ रे।।
धीरू टीरू तुमे देखे जाएन रोए बे।
ग्रामेया वोंलू वावेग्रा भाईग्रो हां सोतुग्रा गोए होए बे।।

टीकें के बागड़े में चिता सजी, झांखो ने चारों दिशाग्रों को नमस्कार किया। बाजगी ने ग्रठारह ढोल करनाल पर 'ढलदा छतर' लोक-ताल बजाया। झांखो ने प्यार भरे शब्दों में ग्राग की लौ को ग्रपने कनोउल् कान के साथ, सिर के बालों के साथ स्पर्श करते हुए कहा-भाई बहनं, ससुर, दिलमी भाई! मैं सती होंने से पहले तुम्हारा प्वाड़ा (सदियों का झगड़ा) समाप्त कर रही हूं। भगवान ग्राप को एकता प्रदान करे। मेरा सती होना ग्रमर हो! ऐसा ही हुग्रा। दिवाली में कुफ्फर गांव में ग्रब तक बूढ़ा के बाद प्वाड़ा गाया जाता है। महासती की सेर कोलला बागी में ग्राज भी इस ग्रमर बलिदान का सन्देश देती है। ग्रजबा की देश-भक्ति तथा झांखो का सती होना राजपूताना की कहानियों से कम नहीं।

—ग्रानन्द कुटीर, खुन्नु
देवठी मझगांव, सिरमौर, 171209

लोक-साहित्य में लोक-गाथाग्रों का महत्वपूर्ण स्थान है। महाराष्ट्र में इन्हें 'पंवाड़ा' तथा गुजरात में 'कथा-गीत' कहा जाता है। डॉ0 ग्रियर्सन ने इन्हें 'पापुलर सांग' की संज्ञा दी है। हिमाचल प्रदेश में इस श्रेणी में रखे जा संकनें वाले गीतों के ग्रनेक नाम यथा, हार, झेड़ा, बार, प्वाड़ा ग्रादि हैं। ये कथा-गीत हमारे ग्रलिखित इतिहास की मूल्यवान धरोहर हैं। सोमसी में प्रकाशनार्थ इस प्रकार की ग्रन्यंत्र ग्रप्रकाशित सामग्री का स्वागत है।

—सम्पादक

बरलाज

—केशव ग्रानन्द

रामचरित मानस के विभिन्न प्रंसगों ग्रथवा प्रंसगाधारित पद्यों को लेकर प्रातः-सायं के भजनों व शादी ब्याह जैसे महत्वपूर्ण सामाजिक ग्रायोजनों में गाए जाने वाले गीतों के ग्रतिरिक्त कुछ विशेष ग्रवसरों पर रामचरितमानस का विधिवत् पाठ ग्रथवा नाटकीय प्रस्तुतिकरण हिमाचलीय जन-जीवन का ग्रभिन्न ग्रंग है। बरलाज भी हिमाचल के लोग्रर महासू क्षेत्र में (वर्तमान ज़िला शिमला व ज़िला सोलन म) लोक-रामायण का एक मनोरंजक व लोकप्रिय ग्रायोजन है।

बरलाज का ग्रायोजन दीवाली, एकादश (दयोठन), शरद् पूर्णिमा व ग्रमावस ग्रादि पर्वों पर होता है। ग्रायोजन प्रायः देवस्थल पर होता है। रात्रि के समय लगभग ग्राठ नौ बजे, शुभ मुहूर्त पर बरलाज प्रारम्भ होता है ग्रौर प्रातः तीन-चार बजे तक इसका प्रदर्शन चलता रहता है। प्रायः प्रातः चार बजे देव-स्थल का देवता 'खेलता' है ग्रौर 'नमाला' देता है। प्रचलित मान्यता के ग्रनुसार देवता एक व्यक्ति-विशेष में प्रवेश पा कर क़िए गए तथा निवेदन तथा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर (नमाला) देता है। यह व्यक्ति–विशेष स्थानीय भाषा में 'द्यूंग्रां-' 'दीयूं' ग्रादि कहलाता है। 'द्यूं' में द्रेवता की छाया उसके एक विशेष कम्पन के साथ झूमने, सिर व हाथों के झटकने से ग्राई मानी जाती है। 'द्यों' में देवता की छाया के ग्राने का स्थानीय नामकरण है–"खेल"

देवस्थल के खुले प्रांगण में, जिसे स्थानीय भाषा में 'ग्राखाड़ा' कहा जाता है, पर्याप्त समिधा एकत्रित कर, उन्हें जलाया जाता है। स्थानीय भाषा में यह प्रज्वलित समिधा 'गीठा' कहलाती है ग्रौर इस ग्रायोजन का एक मुख्य चिन्ह होने के कारण इसे ही 'बरलाज' भी कह दिया जाता है।

बरलाज के मुख्य चार ग्रदाकार होते हैं। ऊन का कोट (प्राय: ग्रचकननुमा) तंग मोहरी का पाजामा ग्रौर पगड़ी (प्रायः सफेद) इनका पहरावा होता है। हर ग्रदाकार के पास एक बल्लम (लाठी) होती है, जिसे भूमि पर टेक इसके धातु मढ़े ऊपरी भाग को दाईं बगल के नीचे दबा कर, दाऐं हाथ पर सिर को टिका, ये ग्रदा-कार दो-दो के दो दल बना कर ग्रामने सामने खड़े हो जाते हैं ग्रौर 'बरलाज' गाते हैं। दर्शक-श्रोता, 'गीठे' के चारों ग्रोर खुले घेरे में बैठते हैं।

'बरलाज' ग्रयोजन के तीन ग्रंग हैं। इन्हें क्रमशः रमैणा, 'रथौल' ग्रौर 'छोकड़ा' कहा जाता है। 'रमैण' भाग में 'रामचरित मानस का प्रसंग-विशेष' छंदमुक्त पदों में लयमुक्त

गाया जाता है। एक दल जो पद गाता है दूसरा दल उसी को दोहराता जाता है। 'रथौल' भाग में 'रमैण' से आगे का प्रसंग सीधे एक ही स्वर में एक विशेष ढंग से सुनाया जाता है। एक दल, एक एक पंक्ति में प्रसंग विशेष को बढ़ाता जाता है और दूसरा दल उसे स्वीकारता चलता है। 'छोकड़ा' में 'रथौल' के आगे का प्रसंग नृत्य के साथ सुनाया जाता है। इस नृत्य में मुख्य गायक अदाकारों के साथ इच्छुक दर्शक भी, दो दो के दल बनाकर शामिल हो जाते हैं। 'बरलाज' के इस 'छोकड़ा' भाग में ढोल करनाल, हरणसिंगा आदि लोक-वाद्य भी प्रयुक्त होते हैं।

उदाहरणार्थ :– 'बरलाज' में सीता हरण प्रसंग :

रमैण : (प्रारम्भ में हरणसिंगा बजाया जाता है।)

एबे भाया रामा लखणा, नठे जाओ जंगला ओ,
पंजबटिए डेरा बे जमाओ, दशुओ ले,
होए लंका खबरो, सिया रहि रे जंगलो वे आए। – 2

एबे भाया सुइनुआ, मेरे भाइया ओ,
मेरे संगे जंगलो खे चाले, सिया देओते ,
आए रौहे बणो दे ओ, म्हारे नार लंका के ले आणे। – 2

एबे भाया आगे पीछे नठो सुइनू दशुओ,
पंजवटी रे निउड़े रे जाओ सुइनुए,
की भाइयो अरजो, पंजवटी रे निउड़े रे जाओ। – 2

एबे भाया सिया रा गो डेरा दशो, सुइनू हो,
तुमे दशुओ चोगस रौहे, मेरे बणना,
सुइने रे मिरगो, तौबं दशुआ सिया रे भगावे।– 2

एबे भाया सुइने रा बणो सुइनू मिरगो ,
सिया रे आंगणे घूमो, सिया देओते,
देखो भाइयो मिरगो, तेस तेखी रो मोहितो रे होए। – 2

एबे भाया सुइने रा धाए देणा मिरगो,
मेरे नीणि रे जुबया नशाणी, रे हाथो दा,
लओ रामा बणशो ,चले जाओ रे मिरगो रे थोरे। – 2

[राम, लक्ष्मण व सीता सहित वन में चले जाते हैं। वे वहां पंचवटी में रहने लगते हैं। लंकेश को इस बात की सूचना मिल जाती है कि राम लक्ष्मण के साथ सीता भी वन में आई है। रावण मारीच को बताता है कि सीता वन में आई है। और हमने

उसे लंका हर लाना है। रावण व मारीच पंचवटी के पास आ जाते हैं। वहां वे राम, लक्ष्मण व सीता को देखते हैं। मारीच रावण से कहता है कि–मैं सोने का मृग बनूंगा, तुम होशियार रहना और सीता को भगा ले जाना। मारीच सोने का मृग बनकर पंच-वटी के आस-पास घूमने लगता है, सीता सोने का मृग देखकर उस पर मोहित हो जाती है। 'यह मृग मारना है और यह निशानी मुझे आयोध्या ले जानी है'–यह कह कर सीता, राम से धनष उठाने और मृग को मार लाने का आग्रह करती है।]

रथौल :

एकदलः राम देखो जंगले चला जाओ,
दूसरा दलः भले जी।
आगे आगे मिरग भागो,
भले जी ।
पीछे जुध्या रे राम भागो,
भले जी ।
ना देख डेरे दा जती बैठा होला,
भले जी ।
ना देख सुइनू या अरज करो तो क्या बोलूं।
बोलो भला जी ।
ना देख राम बणी जाओ,
भले जी ।
जती खे हाको देओ,
भले जी ।
दौड़ी रो बणो औवी जाणो,
भले जी ।
ना देख राम मिरगे घेरी पाया,
भले जी ।
ना देख सीता हाक शुणो,
भले जी ।
जती के बोलो,
भले जी ।
जंगले चले जाणो,
भले जी ।
स्वामी मिरगे घेरी पाए,
भले जी ।
सिया जती रे झेड़ा लागो,
भले जी।
दूजी हाक तइएं आए,
भले जी ।

ना देख जती था अरज करो तो क्या बोलूं,
बोलो भला जी।
ना देख धणश थागी देश्रो,
भले जी ।
डेरे गिरखी धणशो री कार देश्रो,
भले जी।
ना देख सीता के अरज करो तो क्या बोलूं,
बोलो भला जी ।
ना देख कारो को बाहर नी जाश्रो,
भले जी ।
कार कोई अंदर लंघो पाला,
भले जी ।
जलो रो भस्मी रा ढेर हुई जाला,
भले जी ।
हाथो दे धणश लश्रो,
भले जी ।
रामो रे घोरे चला जाश्रो,
भले जी ।
ना देख लंका रा रावण था, क्या काम कमाश्रो,
भले जी ।
न देख साधु रा भेष बणावी देश्रो,
भले जी ।
लांबो शिरो वी जटा लाश्रो,
भले जी ।
सीता रे डेरे श्रावी जाला,
भले जी ।
माता करी रो भिक्षा मांगो,
भले जी ।
भोली-भाली सीता होली,
भले जी ।
भिक्षा लई रो बाहर श्राश्रो,
भले जी ।
ना देख रावण था बांही को थामों, तुरत सुवो बठाली देश्रो,
भले जी ।

[राम धनुष उठा, मृग की दिशा में वन को चले जाते हैं। आगे आगे मृग और पीछे पीछे राम भागते हैं। पंचवटी में सीता के साथ लक्ष्मण बैठा है। मारीच, राम की आवाज़ में लक्ष्मण को पुकारता है कि—हे लक्ष्मण! मुझे मृग ने घेर लिया है इसलिए तू शीघ्र वन में आकर मेरी रक्षा कर। सीता को यह करुण पुकार सुनाई देती है। वह लक्ष्मण को वन में जाकर राम की रक्षा करने का आदेश देती है। लक्ष्मण सीता के बार बार

कहने पर वन जाने के लिए विवश हो जाता है। धनुष उठा कर जाते हुए वह धनुष से एक रेखा अंकित करता है और सीता से यह निवेदन करता है कि वह इस रेखा से बाहर न जाए। रेखा के अन्दर जो भी आएगा वह भस्म हो जाएगा। यह निवेदन कर धनुष को संभाल कर लक्ष्मण राम को ढूंढने वन को चला जाता है। उसके जाते ही रावण साधु का वेष धारण कर, सिर पर लम्बी जटाएं लगा कर, सीता के आंगन में पहुंच जाता है और 'माता' पुकार कर भिक्षा मांगता है। भोली भाली सीता भिक्षा लेकर लक्ष्मण-रेखा से बाहर आ जाती है और रावण उसे बांह से थाम कर उठा लेता है।]

'छोकड़ा' :

बोले राणिए रोचना वे हाया,
राणिए रोचना वे हाया— ! 2
खिशकी भाइयो रे जाश्रो,
खिशकी भाइयो रे जाश्रो !—2
रावणे रयो वी बठ्याली,
रावणे रयो वी बठ्याली !—2
बणो दा गरड़ौ रे मिलो,
बणो दा गरड़ौ रे मिलो !—2
जुद्ध बे गरड़ो रे कीयां,
जुद्ध बे गरड़ौ रे कीयां!—2
जुद्धो दा गरड़ौ रे हारो,
जुद्ध दा गरड़ौ रे हारो !—2
रथ बे काशो दा लाया,
रथ बे काशो वे लाया !—2
सिया रे लंका पजाई,
सिया रे लंका पजाई !—2
बागो वे सीतला रे राखे,
बागो वे सीतला रे राखे !—2
देश्रोते हाटे रो श्राए,
देश्रोते हाटे रो श्राए !—2
डेरे वे सीतला रे ढूंढो,
डेरे वे सीतला रे ढूंढो ! —2
डेरे बे सीतला ना मिटो,
डेरे बे सीतला न मिटो !—2
राम जी श्राशुए रे रूणो,
राम जी श्राशुए रे रूणो !—2
जती रे बरजणे लागो,
जती रे बरजणे लागो !—2
रोए ना राम जी नाए रोए,
रोए ना राम जी नाए रोए !—2

जुणिए सीतला रे चोरी,
जुणिए सीतला रे चोरी !–2
जालमें तेसरा रे बेजा,
जालमें तेसरा रे बेजा !–2

[सीता रोती चिल्लाती है, छूटने का प्रयत्न करती है। रावण उसे रथ में बिठाता है। वन में गरुड़ (जटायु) मिलता है। जटायु रावण से युद्ध करता है। युद्ध में जटायु हार जाता है। रावण रथ को आकाश में ले उड़ता है और सीता को लंका पहुंचाता है। लंका में सीता को वह बाग में (अशोक वाटिका में) रखता है। उधर राम–लक्ष्मण वन से लौटते हैं। पंचवटी में सीता को ढूंढते हैं। वहां सीता नहीं मिलती। राम विलाप करते हैं। लक्ष्मण ढाढ़स बंधाते हुए कहता है कि–जिसने भी सीता को चुराया है, हम उसका बीज नाश कर देंगे।]

–नार्थ फील्ड, लोयर कैंथू,
शिमला-3

लोकगीत मानवीय कृतित्व की वह सामान्य धरोहर है जो विश्व-मानवता की भूमि पर प्राप्त हुई है।

–डा0 सत्येन्द्र

उन्नीसवीं शती की रंगकला का एक पृष्ठ– कसबाई मंडवे

–हरिश्चन्द्र पराशर

लोक-जीवन का सागर कई अस्मिताओं की चट्टानों को अपने भीतर डुबो कर उनके ऊपर अपनी उद्दाम और उच्छल धारा उर्मिल करता रहता है। हल चलाने वाले किसान शाश्वत मूल्यों की सूझबूझ में किताबी पढ़ाई लिखाई वाले विद्वानों से अनेकधा अधिक विवेकशील पाए गए हैं। सामयिक बरसाती वनस्पतियों की भांति उगी विचार-धाराओं में से लोकमानस अपने उपयोग की बूटियां छांट लेता है, शेष काल के दीमक का शिकार हो जाती हैं। लोक ही प्रमाण है—प्रत्येक अस्मिता की सत्व शक्ति का। उन्नीसवीं शती में भारत का 'लोक' देहाती जिन्दगी को छोड़ कर शहरों में आकर बसने के लिए बाधित हुआ। बिखरी जिन्दगी केन्द्रित हुई। शहरों में ज्ञान के विस्तार से विभिन्न कठबोलियां (जार्गन) बनी। नाटक, सिनेमा, तथा रेडियो ग्राम जलसों के भाषण कठबोलियों और किताबी भाषा को पिघला कर लोकोन्मुख करके पुन: ग्राम जनता में प्रसारित करते हैं। नाटक का आरंगण और मंचन पंचमवेद कहलाया क्योंकि इसने कान्ता सम्मत उपदेश को, मनोरंजन में लिपटे उपयोग को, बेपढ़ और कमपढ़ जनता के लिए सुलभ किया।

भाषा को बोली बना कर प्रचलित करने का एक सफल माध्यम है—नाटक और विशेषतया मंचस्थ नाटक।

बोली को उठाकर भाषा–रूप में स्थिर करने के माध्यमों में से एक प्रमुख माध्यम है–नाटक का आरंगण।

भारतीय जन जीवन में उन्नीसवीं शताब्दी चौखूंट जागरण का प्रकाश लेकर आई थी। सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक और राजनैतिक सभी क्षेत्रों में एक नई चेतना उभर रही थी। उधर कलकत्ता और बम्बई में खेमा गाड़े ईस्ट इंडिया कम्पनी के अंग्रेज अपनी जातीय गरिमा और महिमा का प्रकाश रंगमंच के द्वारा भी बिखेर रहे थे। भारतीय चेतस् की गति द्विविध हो रही थी। वे इस नये प्रकाश को भी ताक रहे थे और अपने प्राचीन, अतीत की ज्योति को भी जगा रहे थे। अंग्रेज अपने साथ शेक्सपीयर और मार्लो तो लाए परन्तु जो रंगमंच वे साथ लाए वह शेक्सपीयर के रंगमंच की भांति जीवन्त न था, वह तो 'कामेडी आफ मैनरज' और 'कामेडी आव इण्ट्रीगज' जैसा मैलो–ड्रामा था। उसमें अति–भावुकता थी, अति–नाटकीयता थी। ऐसे ड्रामा क्लब अंग्रेजों ने कलकत्ता, बम्बई में कायम किए। मारधाड़ के कारोबार में लगी मानसिकता को वे रंगमंच मनो-विनोद दे रहे थे। उधर कसबों और नगरों को बड़ा बनाने वाले वे लोग थे जो देहाती ग्रामोद्योगों के नष्ट हो जाने पर आजीविका की तलाश में शहरों में आकर बसे थे।

वे लोग शहरों में आकर बस तो गए थे परन्तु उनके स्वभाव में नागर–बारीकियों का अभी विकास नहीं हुआ था। उनकी रुचियां अभी ग्राम्य–जीवन की प्राकृतिकता और स्थूलता लिए हुए थी। नगरों की यह नई सामाजिकता अंग्रेजी नाटक–क्लबों की चकाचौंध से प्रभावित हो रही थी, उसकी मानसिकता में स्वच्छन्दता आने लगी। उसे नवीनता की प्यास बड़ी तीक्ष्णता से अनुभव होने लगी। संस्कृत नाटक, मध्य युगीन रंगमंच और लोक-मंच इन तीनों से अलग उसे कुछ और नया चाहिए था जो भले ही सर्वथा नवीन न हो परन्तु जिस पर नवीनता का आवरण अवश्य हो। नए नगरों के नए जनों के व्यापार और कारोबार के औज़ार नए थे अत: उसका मानस भी अपने मनोरंजन के लिए नए जैसे साधन चाहता था। मन प्राण के श्रेय के स्थान पर आंख–कान का प्रेय प्रधान हो गया। रंग–व्यवहार दर्शक भावना से सम्बोधित होने लगा और दर्शक भावना में रोमानियत प्रधान थी, पौराणिकता और पुनरुत्थान गौण थे। रोमानियत के लिए भावुकतापूर्ण सपाट कथा में मनोहारी दृश्यों का संयोजन किया गया तथा आश्चर्यजनक चरित्रों को और भी भावुक बनाने के लिए उन्हें अतिरंजित किया गया। सारी रंगधर्मिता रोमानियत का वातावरण उत्पन्न करने में तत्पर रहती थी। पुरुषों की भाषा में शेरो–शायरी का प्राधान्य रखा गया और स्त्री पात्रों की गद्य में काव्यात्मकता का मिश्रण किया गया।

उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय रंगमंच में संगीत और नृत्य-परम्परा की प्रवृति सजीव थी। यह प्रवृति लोक रंगमंच में पहले से ही प्रमुख थी। लोक नाटक की संरचना संगीत के सहारे ही सम्पन्न होती थी, उसकी अभिव्यक्ति भी दर्शकों तक संगीत के द्वारा ही सम्पन्न और सम्पूर्ण होती थी। लोक रंगमंच के विशाल जन समूह को मंत्र-मुग्ध रखने के लिए संगीत आवश्यक था। लोक नाटक के अभिनय से लोक रंगमंच में दृश्य परिवर्तन के लिए परदा उठता गिरता नहीं था अत: उस अभाव की पूर्ति भी संगीत द्वारा ही की जाती थी। नाटक के विभिन्न दृश्यों को जोड़ने के लिए, नाट्य व्यापार को एक स्थान से दूसरे स्थान पर होता हुआ दिखाने के लिए और नाटक की किसी एक घटना पर अधिक और विशेष बल देने के लिए भी संगीत का प्रयोग किया जाता था। ऐसा संगीत अधिकांशत: इतिवृत्तात्मक गायन के रूप में ही होता था। संवादों में भी गीतों का प्रयोग होता था। कुछ पात्र गा गा कर ही अपना संवाद दूसरे पात्र से कहते थे। पात्रों के भाव-अभिनय के प्रभावी प्रेषण के लिए भी गीत-संगीत का प्रयोग होता था। रामलीला, रासलीला, नौटंकी, स्वांग, तमाशा, भवाई, गाथा, करियाला, भगत आदि लोक नाट्यों में संगीत का बाहुल्य और प्राधान्य स्पष्ट था। संगीत की जिन शैलियों को अशास्त्रीय और लोक कहा जाता है उनमें से कुछ शास्त्रीय शैलियों और तालों के ही ऐसे रूप हैं जो जन मानस में उतरकर और घुलकर एक सामयिक और नया रूप धारण किए हुए हैं और फिर लोक प्रिय तालों में बदल गए हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के कस्बाई मंडलों में पारसी थियेटर का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। पारसी थियेटर का मूल रूप सन् 1849 में स्थापित बम्बई थियेटर में खोजा जा सकता है। इस बम्बई थियेटर में अंग्रेज, पारसी और अंग्रेजी पढ़े लिखे हिन्दुस्तानी थे। वहां अंग्रेजी में ही ड्रामा करते थे। इसके अनुकरण पर 'हिन्दु

ड्रामेटिक कोर' नाम की संस्था बनी। उसने मार्च 1853 में एक मराठी नाटक का अभिनय किया। इस 'कोर' के नाटक बहुत सफल रहते थे और इनसे आमदनी भी होती थी। पारसी व्यापारियों ने नाटक के इस व्यापारिक पक्ष को उपयोगी समझा और अनेक नाटक कम्पनियों की स्थापना की। इन नाटक कम्पनियों को पारसी थियेटर का नाम दिया गया। पारसी नाटक कम्पनियों का, व्यावसायिक दृष्टिकोण की पृष्ठभूमि में, उस समय की रामलीला, स्वांग आदि मण्डलियों का व्यावसायिक दृष्टिकोण भी था। इनमें विशेषतया स्वांग में, नाच-गानों, मुखौटों, नकलों, चमकीली तड़क भड़क वाले चमत्कारों की प्रधानता थी और उसने जन-रुचि को पहले से ही असाधारणता की इच्छुक बनाया हुआ था। इस पृष्ठभूमि में पारसी थियेटर ने जनमानस की रूमानियत का लाभ उठाने के लिए अतिनाटकीयता का सहारा लिया। इस थियेटर के नाटककारों में नारायण प्रसाद बेताब, राधेश्याम कथावाचक, आगा हश्र काश्मीरी का नाम और योगदान इतिहास–प्रसिद्ध है।

इन तीन नाटककारों के योगदान को हृदयङ्गम करने से पूर्व यह समझ लेना आवश्यक है कि उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारतीय कस्बाई जीवन में रंगचेतना का पुनरुत्थान अभी नहीं हुआ था। इन तीन नाटककारों ने भरसक प्रयत्न किया कि तात्कालिक वक्त के मिजाज को मंचित किया जाए। प्रत्येक स्थिति में दुर्भाग्य-दुर्बोध भारतीय स्वभाव की विशेषता है और उन दिनों परतंत्रताजनित कुण्ठा और अवसाद तो क्षेत्रीय सीमाएं तोड़ कर भारत व्यापी बने हुए थे। देहात का किसान नगरों में आकर मजदूर बनने लगा था और इससे नगरों का मध्यवर्ग बढ़ रहा था। मध्यवर्ग में हताशा बढ़ रही थी जो जीवन के उत्स को चाट रही थी। जीवन्त प्रेम की जगह अकेलापन और उदासी थी। उस मध्यवर्ग में जीवन के मूल्य काम-चलाऊ थे। उनके जीवन में रिक्तता थी। अपनी ऐसी दुरवस्था से मुकरने के लिए वह द्विस्तरीय जीवन जीना चाहता था। घर-गृहस्थी की कड़वाहट को वह खेल-तमाशों में आकर भूलना चाहता था। उसे लगता था कि उसका परिवेश प्राणहीन ठूंठ, नीरस, मशीनी और फीका था।

जब मध्यवर्ग की हताशा के घाव में मूक दर्द हो रहा था तो पारसी थियेटर के ये नाटककार सौन्दर्य की तलाश में जूझे। राधेश्याम कथावाचक ने पौराणिक चरित्रों के माध्यम से प्राचीन भारत की कर्मठ, युद्धवीर, धर्मवीर चेतना अपने समय के सामने रखी।

उनका नाटक 'वीर अभिमन्यु' इस दिशा में सफल प्रयास था। पौराणिक पात्र के द्वारा सांकेतिक और प्रतीकात्मक रूप में उन्होंने राष्ट्रीय-चेतना को भी झकोरा। उनका 'प्रह्लाद' नाटक इसका प्रमाण है। 'वीर अभिमन्यु' नाटक को तो महामना मालवीय जी ने भी देखा था। राधेश्याम के कृष्णावतार, रुक्मणी मंगल, ईश्वर-भक्ति नाटक भी प्रसिद्ध हुए। 'ईश्वर भक्ति' का उद्घाटन उस समय के कांग्रेस-अध्यक्ष पंडित मोती लाल नेहरू ने किया था। रात के दो बजे तक वह नाटक देखते रहे थे। पौराणिक नाटकों का अभिनय देखने के लिए उस समय जनता में बहुत उत्साह था। यदि दिल्ली में अभिनय है तो पानीपत, गाजियाबाद, मेरठ, बुलन्दशहर तक की जनता टिकट बुक करवा कर अभिनय देखने आया करती थी। ड्राप-सीन की पूजा करके नाटक का उद्घाटन किया जाता था।

पौराणिक नाटकों में भी अंग्रेजी शासन के अन्याय के विरुद्ध बड़ी कुशलता से और दक्षता से कुछ अंश जोड़ दिये जाते थे। एक उदाहरण है :-

हे पुज्यवरो ऋषियो, मुनियो,
हड्डियों का कैसा ढेर है यह!
यह तपोभूमि का कलंक,
या शासन का अन्धेर है यह!

नारायण प्रसाद बेताब का 'महाभारत' नाटक पारसी थियेटर में प्रसिद्ध था। यह नाटक पहली बार उन्तीस जनवरी उन्नीस सौ तेरह में देहली में अभिनीत हुआ था। इस नाटक का महत्व दो नाटकों से बढ़ा, एक तो इससे पहले हिन्दू जनता अपने राज्यों और वीरों का मंच पर मजाक होता देखते देखते तंग आकर आक्रोश की स्थिति में पहुंची हुई थी। इस नाटक ने सत्य के गुप्तबल की शक्ति का उद्‌घाटन किया। दूसरी विशेषता थी इसकी शालीनता और शीलता, इस नाटक को अपने परिवार की स्त्रियों सहित देखा जा सकता था। महिलाओं ने इस नाटक को बहुत पसन्द किया था। इस नाटक में चेता चमार और सत्ती गोपी की उपकथा का प्रसंग अछूतोद्धार और समाज-सुधार के उद्देश्य से संयोजित किया गया है। कॉमिक रिलीफ के प्रकार का भाव-शमन भी उपकथाओं के संयोजन से सम्भव किया गया है। उन्नीसवीं शती के दर्शक की मनोदशा और मनोरंजन स्तर को ध्यान में रखकर नाटककार को संस्कृत रूपक अंग्रेजी ड्रामा और लोक-स्तरीय लीला आदि सभी के उपयोगी तत्वों का समावेश करना पड़ता था। राधेश्याम सनातनी परम्परा के थे और बेताब आर्यसमाजी विचारधारा के, परन्तु प्रयोजन दोनों का उस समय की परिस्थितियों के अनुसार पुनरुत्थान ही था। बेताब ने अपने नाटकों के गाने लिखते समय रंगशाला की शैली और दर्शकों की रुचि को छन्दों की ध्वनियों की अपेक्षा अधिक महत्व दिया।

एक उदाहरण—

उदय हुआ जब आन कर,
पूर्व जन्म का पाप।
सम्पत्त सब चम्पत हुई,
रह गए आप ही आप!

तीसरा और चौथा चरण मिलकर स्वयमेव एक मुहावरा है, चौथे चरण में मात्रा की वृद्धि है जो दोहा में अत्यधिक खटकती है फिर भी मुहावरे को सलामत रखा गया है क्योंकि जनमानस में मुहावरा छन्द की अपेक्षा अधिक सुदृढ़ होता है।

आगा हश्र काश्मीरी में आकर रोमानी नाटकों की प्रवृति अधिक मुखरित है। जैसे-जैसे विदेशी प्रभाव और दबाव बढ़ रहा था, मध्यवर्ग की मानसिकता में फारसी प्रेम-कहानियों और लौकिक श्रृंगार के माध्यम से अतृप्त कामना को तुष्ट करने की प्रवृति बढ़

रही था। हश्र की विशेषता है कि वह अपने चरित्रों को नाटकीय स्थिति में डालकर उनके संघर्ष और शक्ति को उद्‌घाटित करता है। तुरानी बनाम ईरानी जीवन मूल्यों से सम्बन्धित हश्र का नाटक रुस्तम-सोहराब नाटकीयता की दृष्टि से एक गहन और तीव्र नाटक है। हश्र की भाषा का रूप देखने के लिए एक उदाहरण पर्याप्त रहेगा—

तेरी सूरत तेरी बातें मेरे वो ही सहारे हैं,
तुझी को देख कर दुनियां में इतने दिन गुजारे हैं।
कलेजे से लगा लेने को पाऊंगी कहां तुझको,
करेगा कौन जिद मुझ से, कहेगा कौन मां मुझको।

उन्नीसवीं शती के पारसी थियेटरों के नाटकों का सफलता का कारण था—श्रमसाध्य रिहर्सल। कुछ नाटकों की रिहर्सल तो लगातार एक साल तक होती रहती थी। कुछ कम्पनियां प्रतिदिन नियमित रूप से दिन में 12.00 बजे से 5.00 बजे तक रिहर्सल करती थीं। रिहर्सल में मुद्राओं के साथ अभिनय को तथा प्रवेश और प्रस्थान को प्रभावपूर्ण बनाने पर विशेष बल दिया जाता था जो विविध और परस्पर विरोधी भावों को अभिव्यक्त कर सके। आगा हश्र काश्मीरी के नाटक 'भीष्म प्रतिज्ञा' में भाव-विविधता के अनेक प्रसंग मिलते हैं।

जनमानस में नाटकीयता के प्रति रुचि बनाए रखने के लिए इन व्यावसायिक नाटक कम्पनियों ने सफल प्रयास किए हैं। जनमानस के अनुकूल ही इन्होंने संस्कृत-नाटक, मध्य-युगीन नाटक और लोक रंग-मंच तीनों का मिलाप करके उन्नीसवीं सदी का एक भारतीय रंगमंच तैयार किया। उस समय की कुछ कम्पनियों के नाम गिना देने असंगत नहीं होंगे और साथ यह गिना देना कि पहले पहले नाटक कब कब खेले गए, रोचक रहेगा:—

(1) सन् 1843 ई० में नवाब वाजिद अलीशाह द्वारा लिखित एवं निर्देशित 'रहस' नाटक लखनऊ में मंचस्थ हुआ।
(2) सन् 1853 ई० में बम्बई में विष्णुदास अमृत भावे की हिन्दू ड्रामेटिक कोर द्वारा 'राजा गोपी चन्दर और जालन्धर' मंचस्थ हुआ।
(3) सन् 1855 ई० में सैयद आगा हसन 'अमानत' का नाटक "इन्दर सभा" लखनऊ में मंचस्थ हुआ।
(4) सन् 1871 ई० में बनारस थियेटर द्वारा 'जानकी मंगल' मंचस्थ हुआ।
(5) सन् 1868 में विक्टोरिया नाटक मण्डली व्यावसायिक रूप में कार्य करने लगी और सन् 1871ई० में गुजराती नाटक 'सोने के मूल की खुरशीद' का हिन्दी-उर्दू मिश्रित भाषा में अनुवाद होकर मंचस्थ हुआ।
(6) सन् 1872 में 'नूरजहां' गुजराती नाटक का हिन्दी अनुवाद होकर एलफिंस्टन ड्रामैटिक क्लब द्वारा मंचस्थ हुआ।
(7) सन् 1872 में विक्टोरिया नाटक मंडली एक निमन्त्रण पर हैदराबाद गई। बम्बई छोड़ कर बाहर यात्रा पर जाना और अन्य शहरों में नाटक दिखाने की प्रथा सन् 1872 के पश्चात् आम हो गई।

(8) सन् 1875 में विक्टोरिया नाटक मंडली बनारस पहुंची। शकुन्तला का अभिनय किया गया। राजे, महाराजे, रईस आकर नाचघर में जमा हुए। कालीदास के धीरोदात्त भावना वाले पात्रों का अभिनय विद्वानों की दृष्टि में उचित स्तर का नहीं था।

(9) सन् 1870 में पर्शियन जोरास्त्रियन नाटक मण्डली की स्थापना हुई परन्तु यह नाटक मण्डली सफल नहीं हुई।

(10) सन् 1871 में एलफ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी की स्थापना हुई। इसके संस्थापक कावसजी खटाऊ थे। यह एक सफल नाटक-मण्डली थी। आगा हश्र काश्मीरी के अनेक हिन्दी-उर्दू नाटक इसी कम्पनी द्वारा मंचित हुए थे।

(11) सन् 1874-75 में नाटक उत्तेजक मंडली की स्थापना हुई। इस मंडली द्वारा हरिश्चन्द्र नाटक साल भर खेला जाता रहा।

(12) सन् 1875-76 में "दि शाहे आलम नाटक कम्पनी" की स्थापना हुई। लगभग दो साल के बाद यह कम्पनी बन्द हो गई।

(13) सन् 1884 में बिहार थियेट्रिकल ट्रूप की स्थापना हुई।

(14) सन् 1882–83 ई० में एलफ्रेड कम्पनी से बंटकर न्यु एलफ्रेड कम्पनी बनी। कई वर्षों तक यह कम्पनी हिन्दी-उर्दू नाटकों का सफलता पूर्वक मंचन करती रही। 'वीर अभिमन्यु' के प्रदर्शन से इस कम्पनी ने हजारों रुपये कमाए। इसी कम्पनी ने 'ईश्वर भक्ति' नाटक 1929 में मंचित किया था जिसे पंडित मोती लाल नेहरू और सरोजनी नायडू भी देखने पधारे थे।

(15) सन् 1880 ई० में मिरजा नज़ीर बेग की थियेट्रिकल कम्पनी की स्थापना हुई। रुक्मनी मंगल और सत्य हरिश्चन्द्र इस कम्पनी के प्रिय नाटक थे।

(16) सन् 1896 ई० में नाटक प्रवर्तक संगीत मण्डली की स्थापना हुई। इस मंडली का लोकप्रिय नाटक अब्बास अली कृत 'पंजाब मेल' रहा।

इस संक्षिप्त अध्ययन से मालूम होता है कि जब किसी जनसमुदाय में आम जन-जीवन क्रियाशील होता है तब नाटकों का मंचन-आरंगण क्रियाशील एवं त्वरित होता है। मनन और चिन्तनशील स्वभाव दर्शन और भजन की ओर प्रवृत्त करता है। जब कि क्रियाशील स्वभाव नाटक-लेखन और मंचन की ओर लगाता है। जब व्यक्ति अपने वर्तमान से हताश और सन्तुष्ट हो कर कुण्ठित हो जाता है तब वह अपने सहज क्रियाशील स्वभाव से मनचाही जीवन स्थितियों की सृष्टि करके उनका मंचन करके स्थितियों का स्वामी बनने का आभास पाता है। उन्नीसवीं शती की बड़ी नाटक मंडलियों ने अपने समय की धड़कन को पहचाना। सालम उर्दू और ठेठ हिन्दी को मिलाजुला कर प्रचलित हिन्दवी भाषा को बम्बई, दिल्ली, इलाहाबाद, बनारस, कलकत्ता आदि महानगरों में प्रसारित किया और छोटे नगरों की कसबाई ढंग की मंडलियां को स्थानीय आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्रोत्साहित किया। इन मंडलियों ने भारत के गौरवमय अतीत को तथा हिन्दु मुस्लिम परम्परा के पावन शौर्य को मंचित करके जन—रुचियों को स्वस्थ रखने के लिए ऐतिहासिक महत्व की भूमिका निभाई है।

वारेन हेसटिंग (1772–85) प्रथम योरुपी प्राच्यवादी था। भारतीय साहित्य और धर्म के प्रति उसकी श्रद्धा ने सी विलियम जोन को कलकत्ता में ऐशियाटिक सोसायटी स्थापित करने के लिए प्रेरित किया। वहां से 'शकुन्तला' नाटक का अनुवाद अंग्रेजी में हुआ। उस अनुवाद से गोयटे प्रभावित हुआ और उसने योरुप के विद्वानों का ध्यान भारत की ओर निष्ठापूर्वक आकृष्ट किया। उधर प्राच्यवादियों ने भारत के धर्म–दर्शन को प्रकाशित किया। उन्नीसवीं शती के अर्ध तक भारत की धार्मिक, दार्शनिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक परम्परा योरुप के सांस्कृतिक हाथ में प्रजायी हो कर प्रवाहित होने लगी थी। शकुन्तला नाटक का यह चमत्कार भारत के लिए वरदान सिद्ध हुआ।

हमारा प्रदेश चित्रकला और नृत्यकला के विकास और संरक्षण में प्रसिद्ध है। उन्नीसवीं शती की 'कांगड़ा कलम' की चित्रकला विश्वविख्यात है। नृत्यकला में चम्बा-कुल्लु-महासु की नाटियां मोहक हैं। यहां लोक-जीवन अपने पूरे वैविध्य के साथ जीवन्त और अभिव्यक्त है परन्तु लोक–गाथाओं के आधार पर नाटक नहीं रचे गए, उनमें नाटियां नहीं पिरोई गईं। नाटियां किन्हीं गाथाओं का प्रतीकात्मक अभिनयन थीं, अब वे केवल संक्षिप्त मनोरंजन का दृश्य–मात्र रह गई। आवश्यकता है कि लोक-गाथाओं और जन-जीवन से सम्बद्ध परिदृश्यों को उभार कर लोक-नाटक रचे जाएं और उनमें परम्परागत नाटियां आवेष्टित की जाएं।

—III/10 न्युबराक हर्स्ट,
शिमला-2।

सिरमौर का एक लोकनायक—होकू मियां

—अमर सिंह चौहान

जिला सिरमौर में गाये जाने वाले लोकगीत जहां श्रोताओं की थकान को दूर करके उन्हें मनोरंजन एवं नये उत्साह से प्रभावित करते हैं, वहां दूसरी ओर इस क्षेत्र में गायी जाने वाली (हारें) सुन कर या पढ़ कर मानव के शरीर में जोश एवं राष्ट्रीय एकता की भावना रोम-रोम में समा जाती है। 'हार' शब्द का अर्थ है परासत होना या परासत करना। गुरू गोबिन्द सिंह—सिक्खों के दसवें गुरू, अपने सिरमौर निवास के समय अधिकतर पांवटा साहिब ठहरे थे। उन्होंने राजा कहलूर के साथ लड़ कर उसे परासत किया था। ऐसी अनेकों घटनाओं और युद्धों का वर्णन सिरमौर की प्रसिद्ध 'हारों' में मिलता है। हम कह सकते हैं कि जिस प्रकार नारी के गले का हार एक एक मनके को जोड़ कर तैयार किया जाता है उसी प्रकार आक्रमणकारियों की गतिविधियों को सुरक्षित रखने के लिए लोक-गीत नामक 'हार' तैयार की गई। ये 'हारें' विशेषकर दीवाली और माघ मास में गाई जाती हैं। अधिकतर ये हारें वीर-रस प्रधान ही हैं। लोक नायक 'होकू मियां' ने जन कल्याण के लिए अपने जीवन का बलिदान दे कर अपनी वीरता की महक चारों ओर महका दी। लोकनायक के शब्दों में—पाप का घट फूट कर ही रहेगा—लोहे को लोहा काटता है, शब्द हैं—

सिरमौरी

मानी गाणी बोलो ठाहरी देवी बोलो दुर्गा माई।
दो चार देणे आखरो बोलो मीया होकु रे लाई॥
मोले रे मोलाई ला मेरी किये ला मोअलाई।
गांव दी थोई मानलो बोलो मेलो खुमली पाई॥

खुमली दी बातो थोई बोलो होकू मींया ए लाई।
नोइया नोइया रोवे मानलो रे खुमली खे आई॥
नोइया नोइया लोबे मानलो रे खुमली दे समझाई।
पखो देणो बोलो राजा खे ऊबो नोइणी सजाई॥

मअता लोबा बोलो बजीरो इयो बातो खे शाई।
काम देणो बोलो मअता तेरे इयो बातो रो कराई॥
मअता पांव बजीरो बोलो इयों बातो री टेअड़ो?
पजसाजिया बोलो अबो करे नी इंदी तुबे देरो॥

ढिका रोवा छुटी बोलो एसी राजे रा बे एआणा।
मअता बोलो बजीरो करो तुबे आपणे मनो रा जाणा॥
मअते लोबे बजीरे कोसी कोसीयो बोलो खाई।
इयो लोबे बातो खे होकु ए नोइया नोइया शाई॥

खुमली दी बातो थोइ बोलो होकु मींया ए लाई।
पांच शौ बोलो फोउजो देणी नोइणी खे सजाई॥
फुलो लो फुलटू बोलो किए फुलो ला सेंआरो।
पांच शौ बोलो फोउजो हुई नोइणी खे तेआरो॥

हिन्दी

—देवी दुर्गा माता के निवास स्थान पर गाना गाया गया।
—दो चार शब्द होकू मियां के गाये गये॥
—टेक
—ग्राम 'मानल' में एक सभा का आयोजन किया गया।
—सभा को सम्बोधित करते हुए होकू मियां बता रहा है।
—मानल के नवयुवक सभा में शामिल हुए हैं।
—नवयुवकों को सभा में समझाया जा रहा है।
—नवयुवकों का दल हम सजा कर राजा के पास नाहन ले जायेंगे।
—महता वजीर को इस जटिल समस्या के हल करने के लिए पूछा जा रहा है।
—महता जी! आप इस समस्या का क्या कर सकते हैं या क्या करवा सकते हैं।
—महता वजीर ने इस बात को टाल दिया।
—दल सजा कर तुम आ जाना, इसमें देर न करना।
—राजा का राजकुमार अभी नन्हा सा है।
—महता वजीर ने कहा कि तुम अपनी मनमानी करो।
—महता वजीर मानव जाति को कोस कोस कर खा रहा है (तंग कर रहा है)।
—इन सब बातों के लिए होकू मियां नवयुवकों से सलाह ले रहा है।
—सभा को सम्बोधित करते हुए होकू मियां कह रहा है।
—पांच सौ नवयुवकों की सेना नाहन के लिए तैयार करो।
—टेक
—पांच सौ नवयुवकों की सेना नाहन के लिए तैयार हो गई।

सिरमौरी

देव लोवा बोलो मानलो रा इंयो बातो खे लाई।
फोउजो देणी देवा आमोर ऊबी नोइणी खे सजाई॥
देव थोइ बिजटो खे बोलो मानलो गरभी लाई।
इंयो बोलो बातो रो देवा बे तु कुछ कराई॥

देव ए बोलो बिजटे होकु धारी लोई बातड़ी लाई ।
तेरी देऊंबा फौउजो नोइणी शी जीताइयो लेग्राई ॥
बातो थोवा शुणणो खे बोलो होकुए कान लाई ।
जे लेग्राइला देवा जीतियो तेरे ग्रांउ गा थानो दा ग्राई ॥

बातो लांव बोलो फौउजो दी चाकरो बोलो चेली ।
जीती ग्रांउबे बोलो देवा तेरे लांउबे थानो दी चली ।
फुलो लो फुलटू बोलो डाली फुलो ली बांकी दाई ।
होकु गोवा बोलो रावतो बाइण्डा बेंवठी शा ग्राई ॥

बातो लांव बोलो फौउजो दी मींया बोलो बारू ।
बाइण्डा पाव बोलो फौउजियो एब्बे भण्डारो का दारू ॥
कालो रोग्रा मग्रता एब्बे नेग्रड़ा नेडीए बोलो ग्राई ।
बाइण्डा लोवा भण्डारो का दारू घामो दा पाई ॥

फौउजो पाई होकु ए बोलो पुरी करीयो सजाई ।
पांच शौ बन्दकी थोई फौउजो खे बोलो मंगाई ॥
नोइग्रा बोलो घुण्डोरी खे मीयां ए शीखो खे शाई ।
होकु गोवा बोलो रावतो पुण्डा नोइणी खे ग्राई ॥

हिन्दी

]

—मानल के देवते को इस बात के लिए पूछा जा रहा है ।
—हे देवता! हमारी सेना नाहन के लिए सजा दे ।
—(बिजट) देवते को पूछने के लिए मानल में घड़े पर 'थाली रख कर बजाई गई' ।
—हे देवता, इस समस्या का समाधान ग्राप ही कर दो ।
—(बिजट) देवता होकू के साथ बातें कर रहा है ।
—तेरी सेना को मैं ग्रवश्य ही विजयी करवाऊंगा ।
—बात सुनने के लिए होकू ने ग्रपने कान एकाग्र किए हुए हैं ।
—हे देवता, ग्रगर मेरी सेना जीत गई, तो मैं ग्रापकी पूजा के लिए फिर इसी स्थान पर ग्राऊंगा ।
—सेना में कुछ एक सैनिक ग्रापस में बातें कर रहे हैं ।
—हे देवता ग्रगर हम जीत गये तो तेरे मन्दिर में ग्रपनी इच्छा से बकरा चढ़ा देंगे ।
—टेक
—होकू मियां रावत देवी के मन्दिर से बाहर ग्रा गया ।
—सेना में 'बारू' नामक सैनिक कह रहा है ।
—बारूद के भण्डार से बारूद बाहर डाल दी ।
—महता का काल (मरने का समय) ग्रब नजदीक ही ग्रा गया है ।

—भण्डार से बारूद बाहर धूप में डाला जा रहा है ।
—ग्रपनी फौज को होकू ने पूर्ण रूप से सजा दिया ।
—पांच सौ बन्दूकें सैनिकों के लिए मंगवा रखी हैं ।
—गांव घण्डूरी के नवयुवकों से मियां सलाह ले रहा है ।
—होकू रावत नाहन के लिए चल पड़ा ।

सिरमौरी

होकु बोलो रावतो रा हला बड्डा शा बोलो दिलो ।
पाछि ग्रांउबा जीतियो तबे कोरूगा तुंवो ग्रारी मिलो ॥
टाटू दी बोलो रावतो तेरे भली पड़ो ली बांकी केरो ।
फौउजो पौंवची बोलो होकु की पाण्डी कलमो की सेरो ।

काली बोलो बादली रोइ गयणी दी बोलो छाई ।
फौउजो लागी होकु की पाण्डी कण्डारो खे बोलो जाई ॥
सेरो कण्डारो शो बोलो होकु मियां पाछू खे बे हेरो ॥
सेरी बोलो कण्डारो शी देखियो कलमो री सेरो ॥

फुली करो बोलो फुलटू डाली फुलो ला बोलो कूरा ।
सेर देखियो कलमो री लागा बोलो सासो दा बूरा ॥
तेरी ग्रसो बोलो होकु मिया भलोग्रड़ी शी बोलो बुधो ।
याती छुटी घण्डोरी की छुग्रटो झुग्रटड़ी को बुधो ॥

तेरी बोलो रावतो ग्रसो बड्डी शी बोलो बुधो ।
जबे जाणो पखो दो तबे चीग्रते करणो नी बुधो ॥
फुली करो बोलो फुलटू डाली फुलो ली दाई ।
तिथे शी लागी फौउजो बोलो धारो जमदे खे जाई ॥

धारो बोलो जमटे शा देखियो तारा देवी रा धाटो ।
मेरी लाइया देवीए एब्बे मेरे मनो री बोलो बाटो ॥
पांच शौ बोलो नोइया नीग्रवे लागी रोवे ग्रापणी जाग्रती ॥
तारा देवी खे लोइ बोलो सोबीए सुखना मानी ।

हिन्दी

—होकू रावत का बहुत बड़ा दिल है ।
—जीत कर जब मैं वापस ग्राऊंगा तो ग्राप लोगों से मुलाकात करूंगा ।
—रावत की गर्दन पर एक ग्रजीब सी रेखा ग्रंकित हुई ।
—कुछ ही क्षणों में होकू ग्रपनी सेना के साथ कलम बस्ती के खेतों के पास पहुंच गया ।

–आकाश में काली बदली छाई हुई है ।
–होकू की सेना कण्डोर नामक बस्ती में पहुंच गई ।
–कण्डोर नामक बस्ती से होकू मियां पीछे को देख रहा है ।
–कण्डोर नामक बस्ती से कलम नामक बस्ती साफ नजर आ रही है ।
–बस्ती में फूल इस प्रकार खिले हुए हैं जैसे (कुरे) का फूल खिलता है ।
–कलम बस्ती को देखकर मन में व्याकुल हो उठा ।
–होकू मियां तुझ में बुद्धि का समुद्र समाया हुआ है ।
–धरती घुण्डोरी की छूट गई और साथ में भैंस का दूध भी छट गया ।
–रावत तेरी बहुत बड़ी बुद्धि है ।
–जब आप दल के साथ जा रहे हैं तो फिर भैंस का दूध याद नहीं करना चाहिये ।
=(दाई) नामक फूल खिले हुए हैं ।
–वहां से फौज जमटा के पास पहुंची ।
–जमटा से तारा देवी का मन्दिर दीख गया।
–हे देवी मेरे मन की कामना पूरी करके मुझे उचित रास्ता दिखा दो ।
–पांच सौ नौजवान अपनी जानों को हथेली पर ले जा रहे हैं ।
–तारा देवी के समक्ष सभी अपने सुख की कामना कर रहे हैं ।

सिरमौरी

बातो बोलो लाअंदीए सुदामा बोलो फाटो ली केई ।
ताखे बोलो रावता, मअता ए थोवा बेवरा शा देई ॥
बातो बोलो शुणणो खे रावते किये सकने बोलो कानो ।
झगड़े री छोड़ो बोलो बातड़ी तुवे असो म्हारे मोइमानो ॥

मअता ए बोलो होकु खे देइ थोई एशणी काजी ॥
झगड़ा नी करणी म्हारे आमे रोवे झगड़े खे भाजी ॥
दोती करीया बोलो होकु तु मआलो रा बे फेरा ॥
तेशा कोरूबे न्याव बोलो ज चाअला जीवटा तेरा ॥

पेआई दिती सुदामा रीन्डेए जयरो की बोली बुटी ।
होकु री बोलो फौउजो ऊदि काच्ये जोहड़ो खे हुटी ॥
ठिअले खे दिती सोब्बी खे बोलो कणको री रोटी ॥
काटणो खे दिते बोलो बाकरे सुअतणो खे दिती कोठी ॥

नोइया-नोइया बोलो फौउजो रे भली लांव ले गीयो ।
सुतणो खे बोलो होकु मीया आमारा बोलदा नी जीयो ।
आग लागी रोइ कालजे दी सासो दे पड़ी रोवे दागो ।
रात काटणी बुठियो दोती खुली जांदे म्हारे भागो ॥

नोइया लोवे बोलो फौउजो रे होकु मींया ए शाई ।
ठअला बोलो ठअलीए रातो बी लागी बेआई ॥
भेंटो खे बोलो होकु मींया ए नीया सुने का कुजा ।
पांची बोलो नोइया सीअता गोवा मोअलो दा पुजा ॥

हिन्दी

–बात करते हुए सुदामा को घबराहट हो रही थी ।
–रावत जी आप के लिए महता ने सन्देश दिया है ।
–बात सुनने के लिए रावत के कान उत्सुक हुए ।
–झगड़े की बातें छोड़ दो और हमारी मेहमानगिरी स्वीकार करो ।
–ऐसा सन्देश महता ने होकू के लिया दिया ।
–हम लड़ाई नहीं करेंगे, इस के लिए राज–सेना बिल्कुल तैयार नहीं है ।
–कल को होकू महल में आयेंगे ।
–वैसा न्याय होगा जैसा उनका मन स्वीकार करेगा ।
–जहर रूपी दवाई सुदामा ने पिला दी ।
–होकू मियां की सेना पक्के तालाब के लिए रवाना हो गई ।
–सब सैनिकों के लिए गेहूं की रोटियों का आयोजन किया गया ।
–काटने के लिए बकरे दिये गये और सोने का प्रबन्ध एक कोठी में किया गया।
–रात को नवयुवक 'नाटी' लगाने लगे ।
–सोने के लिए होकू जी, हमारा मन इन्कार कर रहा है सैनिकों ने कहा ।
–कलेजे में आग लगी हुई है और दिल में दाग पड़ गये हैं ।
–आज की रात हम जाग कर ही व्यतीत करेंगे, कल को किस्मत का फैसला भी हो जायेगा ।
–अपनी सेना के नवयुवकों को होकू मियां पूछ रहा है ।
–उतनी देर में प्रभात का समय भी निकट आ गया ।
–भेंट के लिए होकू मियां सोने का नारियल ले गया ।
–पांच नौजवानों के साथ होकू महल में प्रवेश हो गया ।

सिरमौरी

सुखना बोलो मानो फौउजो रे बाकरो बे चेली ।
जीती जांउबे देवीए लांउबे बाकरा बोलो छेली ॥
तिथे शी फौउजो लागी शिवपुरी बांई गाशी जाई ।
बांई गाशी शिवपुरी बोलो लोई रोटी बणाई ॥

छुटी गोई बोलो नोइणी खे होकु मींया री शुणाई ।
जुठे लोवे बोलो टुकड़े बांई भीतरे बोलो पाई ॥
भाजी जाइया बोलो मअता तु होकु मींया रे धान्बे ।
होकु रोवा मीया बोलो आई लोवे रे बोलो दान्वे ॥

इंयो लोई बातो खे मग्रता ए फौउजो आपणी शाई ।
होकु रोवा बोलो रावतो फौउजो साजियो आई ।।
कम्रे बी नी बोलो मग्रता तु आपणे मनो रा जाणा ।
राज चाली रोवा बांका तेरा राजा असो एब्बी एआणा ।।

घड़ी लोवे मग्रता ए बोलो आपणे मनो बे घाटो ।
फौउजो चाली रावतो री एब्बे नोइणी री बाटो ।।
बातो लांव मग्रता परो तेसकी फौउजो नी मानो ।
बातो छुटी बोलो आधड़ी पोऊचो होकु नोइणी चुगानो ।।

फौउजो दी बोलो बातड़ी लांव फौउजो रा मिया ज्वाला ।
बीचो किया चुगानो दा फौउजो रावड़ा बोलो मोहाला ।।
मोहाला बोला शुणियो फाटी मग्रता रे मनो दी काई ।
चिग्रटा लोइरो झाण्डा सुदामा गोवा चुगाने दा आई ।।

हिन्दी

—फौज के कुछ एक मुख्य सैनिक देवी के सामने कामना कर रहे हैं ।
—अगर हम जीत कर आ गये तो तेरे मन्दिर में बकरा चढ़ा देंगे ।
—वहां से फौज शिवपुर-बावड़ी के ऊपर आई ।
—बावड़ी के ऊपर सैनिक रोटियां बना रहे हैं ।
—नाहन में होकू मियां के आगमन की सूचना पहुंच गई ।
—जूठी रोटियों के टुकड़े बावड़ी के अन्दर डाले जा रहे हैं ।
—महता वज़ीर तू कभी भी होकू मियां के साथ न उलझना ।
—होकू मियां लोहे के दांत लेकर आया है ।
—महता वज़ीर भी इस बात के लिए अपनी सेना को पूछ रहा है ।
—कि होकू रावत अपनी फौज सजा कर आ गया है ।
—महता वज़ीर तू अपनी मनमानी न करना ।
—राज तेरा अजीब सा चला हुआ है और राजकुमार अभी नाबालिग है ।
—महता वज़ीर अपने मन में कुछ दाव पेंच सोच रहा है ।
—उधर रावत की सेना नाहन के लिए चल पड़ी ।
—जो बातें महता कर रहा था, उसकी सेना सहमत नहीं थी ।
—बातें अधूरी रह गई, और होकू नाहन चौगान में पहुंच गया ।
—सेना का एक सैनिक 'ज्वाला' बातें कर रहा था ।
—मध्य चौगान में बन्दूकों से सूचना हेतु फायर किये गये ।
—फायर सुन कर महता का मन घबरा गया ।
—सफ़ेद झण्डा लेकर सुदामा चौगान में पहुंच गया ।

सिरमौरी

बोलणो की बोलो होकु मीयां करी पाई थी ढेठो ।
सुने का बोलो कुखदा बिता टिके से बोलो भेंटो ।।

बाबरे बोलो फौउजो घड़वी लागी रोइ थी घाटो ।
राज छुटणा मग्रता रे एब्बे हणे लोगो रे बोली ठाटो ।।

आखी दे बोलो मग्रता रे भले पड़ो ले गेरो ।
आणी पाया बोलो होकु ए एब्बे मग्रता रा फेरो ।।
टाटू बी बोलो होकु रे पड़ी मोटड़ी शी बे फेरो ।।
गभ्रजी गोवा होकु मींया बुणोरा जीया शेरो ।।

हिलांइवे न होकु तेरे एब्बे बोलो मग्रतो रे खुण्डे ।
गाशो शी आई ईंटो नु लागी होकु रे मुण्डे ।।
धोका करीयो मग्रता ए आपणा धर्मो बे गाला ।
होकु रे मुण्डो शा लागी गोवा लोऊ रा नाला ।।

शीये ना शिआवटी ए बोलो फाटो ला टोवा ।
लोऊ वेइरो होकु मींया बोलो शहीदा होवा ।।
शीये ना शिआवटी ए बोलो हाला पाणी का ससो ।
शहीदी री बोलो खुशबू पुरे सिरमौरी दी असो ।।

हिन्दी

—बात करने के लिए होकू ने साहस बांधा ।
—सोने का नारियल राजकुमार को भेंट किया ।
—बाहर उसकी सेना मन में सोच विचार कर रही थी ।
—महता का शासन समाप्त हो जायेगा और सब का जीवन सुखमयी हो जायेगा ।
—महता वज़ीर की आंखों में गुस्से के डोरे पड़ रहे थे ।
—आखें देखकर होकू मियां महता की हेरा फेरी को भांप गया ।
—होकू की गर्दन पर एक मोटी सी रेखा चढ़ गई ।
—होकू मियां जंगल के शेर की तरह गरजने लगा ।
—अब तू महता वज़ीर के लोहे के खुण्टों को नहीं हिला सकता ।
—ऊपर से एक सरसराती ईंट आई जो होकू के सिर में लगी ।
—धोखा करके महता वज़ीर ने अपना धर्म नष्ट कर दिया ।
—होकू के सिर से खून की धारा बहने लगी ।
—टेक
—खून का बलिदान दे कर होकू सदा के लिए शहीद हो गया ।
—टेक
—शहीदी की महक पूरे सिरमौर में महकी हुई है ।

कथासार

हज़ारों वर्ष पूर्व सिरमौर में कुशल एवं प्रतापी राजा का शासन था । उनके राज्य-काल में महता नामक एक वज़ीर था जो सदैव सत्ता हथियाने की ताक

में रहता था। राजा के जीते जी सवथा उसकी यह कामना अपूर्ण रही। दुर्भाग्य-वश राजा का देहावसान हुआ और शासन की बागडोर प्रलोभी महता वजीर के हाथ में आ गई। क्योंकि राजकुमार मात्र तीन वर्ष के थे और राजमाता पूजा-पाठ में तल्लीन रहती थीं। इसलिए उसे अन्याय और सैनिक शक्ति के दुरुपयोग में पूर्ण स्वतन्त्रता मिल गई। तरह तरह के अत्याचार बढ़ने लगे। भूमि–लगान बढ़ा दिये गये, नये करों को आरम्भ किया गया, और जनता को बेगार ढोने के लिए बाध्य किया जाने लगा। अत्याचारों के विरुद्ध उठती आवाज़ों का दमन किया जाता था। यद्यपि राज्य के लोग जानते थे कि 15 वर्ष के उपरान्त तो राजकुमार स्वयं राजगद्दी पर आ बैठेंगे, और बज़ीर के शासन का स्वयं अन्त हो जायेगा, परन्तु इस अत्याचारी शासन के अधीन दुःख के 15 क्षण भी 15 वर्षों से कहीं अधिक दुख दायी थे।

समय के परिवेश ने पंख फड़फड़ाये। ईमानदार निष्ठावान एवं साहसी लोकनायक, जो वर्षों से इस अन्याय के प्रति उठती ज्वाला को हृदय में छिपाये बैठा था, भला नित नये शोषण बढ़ते कार्यों को कैसे सहन कर सकता था! सर्वप्रथम होकू मियां ने राजमाता तक अत्याचारों का वृतान्त सुनाने का निश्चय किया। होकू मियां ने प्रतिज्ञा की कि मानव जाति पर हो रहे असहनीय अत्याचारों के विरुद्ध जी जान से लड़ मरेगा। लोक-नायक ने व्यक्तिगत रूप से तीन बार राजमाता से मिलने का असफल प्रयास किया। बस्तियों में अत्याचार और बढ़ने लगे। नारियों और बुजुर्गों को अपमानित किया जाने लगा।

लोहे को लोहा ही काटता है। होकू की धमनियों में खून का प्रवाह तेज़ हुआ। घण्डुरी गांव में लोक–नायक की अध्यक्षता में एक नवयुवक सभा का आयोजन किया। जिसमें होकू का साथ उसके एक मन्दिर के पुजारी मित्र ने दिया। इस सभा में महता के विरोध में सेना के गठन का सुझाव रखा गया। सभा को सम्बोधित करते हुए लोक नायक ने कहा—

"दोस्तो! कौन नहीं जानता, आज इस ज़ुल्म में जनता किस तरह पिस रही है। ज़ुल्म से प्रजा में त्राहि-त्राहि मची है, इस हकूमत में जनता के साथ पशुओं से भी बदतर वर्ताव किया जा रहा है। आज हम जवान अगर खामोश रहे, ज़ुल्म कबूल करते रहें तो आने वाली पीढ़ियाँ भी इसी ज़ंजीर में जकड़ी रहेंगी। हम जवानों को अपना बलिदान देना होगा –खून बहाना होगा–ज़ुल्मी महता वजीर की हकूमत को खत्म करना होगा। भाइयो! आप लोग खेत-खल्याण का काम छोड़ कर यहां एकत्रित हुये हैं– बहुत खुशी की बात है। मैं एक सेना तैयार करना चाहता हूं क्योंकि हमें इस अन्याय के खिलाफ लड़ना पड़ेगा। मेरी सेना में सुख नहीं दुःख मिलेंगे– चैन नहीं, अशान्ति मिलेगी। फूलों पर नहीं कांटों पर चलना होगा, भूखा-प्यासा रहना पड़ेगा –पर इस अन्याय के घट को हम तोड़ कर ही दम लेंगे। मैं आपके सामने प्रतिज्ञा करता हूं कि सब से पहले मैं ही अपना जीवन. . . . करूंगा। जो भाई मेरी फौज में भरती होना चाहता है उसे मौत के दरया में कूदना होगा"। तभी तालियों की गड़गड़ाहट के साथ 500 जवानों की एक पंक्ति खड़ी हो गई।

होकू मियां को सरदार चुन लिया गया। यह विद्रोहियों और चोर-लुटेरों का दल नहीं, अपितु उन शूर–वीरों का समूह था जो राष्ट्र की बलिवेदी पर, बेड़ियां कटाने के लिए सर को धड़ से अलग करने पर दृढ़-संकल्प थे। यह दल दुःखी जनता का था जो अपने हक-हकूक के लिए वज़ीर से लोहा ले रहे थे। "भादरू और सायबू', से शस्त्र प्राप्त कर लिए गए, और उनके 50 सेनानियों को भी फौज में मिला लिया गया। यही वे दो व्यक्ति थे जो पहले महता वज़ीर के प्रशंसक थे। 'करनाल'–हरणसिंगा 'दुमानटू' और 'ढोलों' की आवाज से वातावरण गूंज उठा। कुछ सैनिक घोड़ों पर सवार थे। कुछ पैदल। 550 सैनिकों का यह दस्ता होकु मियां के नेतृत्व में पाप के विनाश के लिए चल पड़ा। पांच सौ बन्दूकों से सजा हुआ दल जमटा पहुंचा। जंहां से तारा देवी का आशीर्वाद लेकर दल शिवपुर बावड़ी के समीप पहुंचा। महता वज़ीर को इस आक्रमणकारी दल का पता लग गया। जैसे ही दल नाहन चौगान के निकट राजमहल के समीप पहुंचा, वज़ीर ने चातुर्य से काम लिया। 'नगोन और सुदामा' सफेद झण्डा लिए खुले मैदान में होकू मियां के स्वागत के लिए पहुंचे। सफेद झण्डा समझौते का द्योतक समझा जाता था। नगोन और सुदामा ने होकू मियां को विश्वास दिलाते हुए कहा कि– "बज़ीर ने राज सभा में घोषणा की है–सरदार होकु विद्रोही नहीं है, वह शासन की भलाई चाहने वाला व्यक्ति है। क्योंकि सरदार होकु की कुछ ग़लतफ़हमी है, इसलिए राज-सेना उसका मुकाबला नहीं करेगी। आज सरदार होकु हमारे मेहमान हैं, कल राजमाता से मिल सकते हैं। पक्के तालाब के समीप मियां के ठहरने का प्रवन्ध किया गया। सींघा मीना और होकु के घोड़े मार्ग के एक ओर हो गये। नाहन कैदखाने के 30 व्यक्तियों के मुखिया बकरास के सागरू को पास बुला कर सलाह की गई, दल पक्के तालाब के पास चला गया। लोगों में समझौते की बात फैल गई परन्तु वास्तविकता क्या थी, इस बात से सब बेखबर थे।

एक बार फिर समय बदला। दूसरे दिन लोक-नायक होकु महल के अन्दर गया और सेना बाहर समझौते के निर्णय को सुनने के लिए उत्सुक खड़ी थी। उन्हें क्या मालूम था कि सरदार होकु धोखेबाज़ सेना के चंगुल में फंस चुका है। सीधा-सादा वीर होकु मियां महता वज़ीर के कपट को भांप न सका। होकु मियां ने राजकुमार को सोने का नारियल भेंट किया, और राजकुमार उससे खेलने लग गया। महता वज़ीर ईर्ष्या और आक्रोश की अग्नि में तप भुन रहा था। तत्क्षण महता बज़ीर ने अपनी सेना के मुखिया को होकु पर आक्रमण करने के लिए संकेत किया।

जन्म-भूमि का सच्चा सपूत भी तलवारों की खनक से कब डरने वाला था। एक तलवार पर अनेकों तलवारें टूट पड़ीं। थके-मांदे वीर होकु के सिर पर अकस्मात एक सरसराती ईंट आ लगी। महल में कोलाहल मच गया। होकु मियां ने वीर-गति प्राप्त की। उसके दल को जब पता चला कि होकु मियां वीर गति प्राप्त कर चुका है, तभी वे अपना साहस खो बैठे। जन-कल्याण के लिए होकु मियां शहीद हो गये परन्तु उनकी वीरता की महक 'हार' के माध्यम से लोक-जगत में पुरातन वीरता एवं लोकगीतों के ऐतिहासिक पक्ष का प्रतिपादन करती है।

–आकाशवाणी,
शिमला–4

म्हासुवी लोकगीतों में सामाजिक परिवेश

—जगदीश शर्मा

डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में:—"लोकगीत के एक-एक चित्रण पर रीतिकाल की सौ–सौ मुग्धाएं, खण्डिकाएं और धीराएं न्योछावर की जा सकती हैं, क्योंकि वे निरलंकार होने पर भी प्राणमयी है और वे अलंकारों से लदे होने पर भी निष्प्राण हैं। ये हमारे जीवन के लिए किसी शास्त्र–विशेष की मुखापेक्षी नहीं है और अपने में परिपूर्ण हैं।"

हिमाच्छादित हिमालयांचल की ओट में छिपी अमूल्य निधियों में लोक–साहित्य अग्रगण्य है। लोकसाहित्य की अग्रिम पंक्ति में लोकगीत प्राचीन काल से ही लोक-जीवन का मानदण्ड पूर्णतया प्रतिबिम्ब बन कर चले आ रहे हैं। लोकगीतों में पुरातन लोकजीवन की छाया उसी प्रकार झलकती है जैसे खण्डहरों, परतों में दबे पड़े अवशेष अपने प्राचीन जीवन-काल का प्रमाण आप देते हैं। तभी तो हिम-आंचल में गाती, शीत नदियों की हरकत करती लहरें, शुद्ध वायु, अटल श्रृंखलाओं, मेलों व सदाबहार लोकगीतों में थिरकते कदमों की प्रशंसा में भारतीय साहित्यकार राहुल सांकृत्यायन की गूढ़, मधुर लेखनी भी मौन न रह सकी।

लोकगीत शब्द का सन्धिच्छेद व समास–विग्रह करने के उपरान्त पता चलता है कि लोक-जीवन सम्बन्धित धाराओं, विचारों को जब लोक–कवि लेखन की सूक्ष्म पकड़ में पिरो कर गीत का रूप प्रदान करता है तो उसे लोकगीतों की संज्ञा दी जाती है। काव्य की नौ विधाओं में जिन नौ रसों का उल्लेख आता है वह पूर्णतया हमारे लोकगीतों में विद्यमान है। काव्य व साहित्य को सामाजिक परि-वेशरहित लेखन की श्रृंखला में खड़ा करना ऐसा ही होगा जैसे नींवरहित मात्र हवामहल।

क्योंकि मानव को यों भी सामाजिक जीवन की परिधि में रह कर, सामाजिक परिस्थितियों से जूझना पड़ता है, नहीं तो वह देव व दानव हो सकता है, मानव कदापि नहीं। अतः लोकगीतों में अक्षरशः चित्रण पुरातन समाज का दर्पण है। म्हासुवी लोकगीतों का नायक "तोतू" निःसन्देह प्रेमचन्द की अमर सर्वोत्कृष्ट कृति गोदान के अमर पात्र 'होरी' से भी निर्धन व कालिदास के पात्र 'दुष्यन्त व 'मेघदूत' से भी पुरातन हो सकता है जो समस्त जीवन भर निर्धनता की चक्की में पिसता रहा। वह अन्त में मृत्यु के बढ़ते अप्रत्यक्ष बाहू को देख कर कहता है..... अब मैं खा-पी कुछ भी नहीं

सकता और न ही व्यक्ति को पहचान सकता हूं। पापी यमराज मेरे जीवन को छीनने ही वाला है। कितनी करुणामय मार्मिक गाथा है—

खाईंदौ न पींदौ मेरे पराणी वं न लोगू
जौं पापे बाड़ूओं मेरी जिंदड़ी रो ढोबू !

आज भी इस सामाजिक पात्र की करुण–गाथा गांव में दुःख–व्यथा से भरी या बच्चे को लोरी सुनाती दादी की भर्राई आवाज सुनाती है और कोई भी करुणापूर्ण मन इसे सुन कर नयनों में गंगा-यमुना झलकाए नहीं रह सकता।

यदा-कदा समाज की निर्धनता की लक्ष्मणरेखा लांघने के लिए एक-आध विभूति दया की देहरी लांघ डालती है। जहां लोककवि नायक के स्वास्थ्य हेतु चांदी की खोखरी देने की पेशकश करता है वहां दया का कमनीय आंचल आ बिछता है—

चांदी मढ़ोयो खोखरे तेरे मूं नाई चाई
एक पूड़े उनशते बेऊ धर्मी री तांई।

आइये, अब आप को एक पारम्परिक मेले में ले चलें जहां जाने के लिए प्रेमिका उत्सुक है। परन्तु अकेले ... जाए तो कैसे! उस की सखियां तो अपने नए वस्त्रों से सजे साजन को 'मूड़ी' उपहार देने, झूला झुलाने और नयनों में भर लेने में व्यस्त होगी। फिर वह अकेले क्यों जाए! आखिर उस का साजन भी तो किसी से कम नहीं। प्रेमी के लिए सन्देश-वाहक भेज दिया गया है। अरे? तुम साजन का घर नहीं जानते न! वह वहीं तो रहते हैं जहां सदा चहलपहल रहती है। और फिर मेले में जाती सुन्दरी अपने साजन के लिए हाथ-पांव 'दूध' से धो, निखार रही है। फिर कितनी सुन्दर होगी ..... ये तो स्वयं जायजा लीजिए ....!

डेवे मेरीया कोलटूआ तू रूपू बदाणु
बोए दाणें रं बेडवे ताखी सिड़कू चाणु
× × × ×
घर सेजो रूपू रो जिन्दे बसौ लं छेड़ू...।
ढ़ाटू धोए ले सोइये, साबणे मूटू बूषे
कोठी काड़ौ री चातरौ लागौ मंगलं बुवं !

और फिर नन्हें मुन्ने भी बड़ी हठ करते हैं मेले में जाने के लिए। आखिर साल में एक बार ही तो मेला आता है। फिर बच्चे तो स्वभाव से भी चंचल होते हैं। मां......... मुझे गेहूं की मीठी 'मूड़ी बना दो न'। साथ में 'राउथल' के मेले के लिए सुन्दर सी खंजर भी दे दो ....।

माए मेरीए सुरकिए भुजं गिउ रामूड़ा लौ
राउतलौ री जातरौ खी !
× × × ×
सिसीबी री खांजरी माए. . . . .पूड़ा लौ
राउतलौ री जातरौ खी !

पुरातन हिन्दू-समाज आदर्शों व परम्पराओं की ठोस शिलाओं से भरी चट्टानों पर खड़ा था। इन पर सतीत्व व पातिव्रत्य के ज्वलन्त उदाहरण हिम-वीरागनाएं 'गरीबी' 'कूजि' "चैंकी" जमती अकाट्य 'काई' के रूप में छोड़ गई हैं जो आज की न्यायालयों के कटघरे में खड़ी तलाक व प्रेमिका के साथ भागती नारी के लिए पति साध्वता का अनुकरणीय चिन्ह है।

नायिका कूजि अपने रोगग्रस्त पति की शैया के साथ बैठी उसे साहस बंधा रही है। प्रिय. . . . मेरे हाथों से जलपान करो ईश्वर तुम्हें रोग-मुक्त कर देंगे.... ..। देखो. . . मुझे देखो प्रिय ये प्यार कभी हमें जुदा नहीं कर सकता . . . यदि. . . .! मैं जिन्दा ही सती हो जाऊंगी। नायक शंका उठाता है ! प्रिय ! गर्म अग्नि की लपटों का ताप सहने का तुम्हारा सामर्थ्य कहां . . . ।

नेगणे कूजिए मू चिती न छलै
आगे गाई पाशड़े तू लाए न बलै ।

प्रिय नहीं....दो आत्माएं इकठ्ठी हो कर ही रहेंगी मुझे सती होने से कोई नहीं रोक सकता. . . . . ये जीवन जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध है।

मोऊ लाउ मांची खी आजो रा तोरौ
जलने मेरे मरणे खी कसो रा न ड़रौ ।

दूसरी ओर 'गरीबी' अपने पति को धर्म दे रही है। उस के सुख-दुःख तो पति के साथ ही जाते रहेंगे। अतः उसे जीवित रह कर भी मृत का सा आचरण करना पड़ेगा। फिर प्रियतम के साथ मरने में कैसा डर ! मैं राजपूत की बेटी हूं. . . . मेरे मन में उठती व्यथा तरंगों को भला कौन जाने. . . . आखिर साजन के साथ ही मरना है।

सात दिणे धर्मों वाइणे हाथे
अबं होउ खशीए रं जलू लं साथं
तुंए मेरे बेदणो किए न जाणे
× × ×
गांया तेरे बूढ़ड़ो जिविया जुलालं
इणी जवानी ए जपरं खी घालं ।

सती को पति-संग जलता देख जनसमूह शोकग्रस्त हो गया। बढ़ई ने भी (पलगी) रामगिर में 'राम संग सीता' लिख दिया था। उस के बिना 'कुन्दली' का बाग, 'खालटी' का क्यार (रोपा) भी सूना लग रहा है। उस के शरीर की चिता हड्डियों की राख पा कर माटी भी आज धन्य हुई। उस की सांस जैसे वायु के साथ मिल कर सच्चे सतीत्व का प्रमाण दे रही थी ! लोक-जीवन-साहित्य में यह देवी अमर प्यार के लिए चन्द्रमा की तरह स्मरण की जाएगी।

बड़ी मांजी बाढ़िए उजला थिया
रामौ लिखू लखणौ पशा वे सिया ।
× × ×
रोपा घटा खालटी रा कुन्दली री बागौ
× × ×
जुगौ गाई निकलं जूइणो बालं
× × ×
सास डेवा सर्गो मास भोगो ले आगौ
हाडियो रं रुडेकू रोए माटी रं भागं ।

इधर गीतकार चैंकी पर भी अपने स्वर्णिम अक्षर पिरोने में पीछे नहीं रहा। घी भरे केशों में आग लगी है। . . . देवी तूने बड़ा जौहर दिखाया। तू निःसन्देह सिहनी से भी वीर है।

देखो-देखा लोगुओ मेरो त्योहारा
धिया री लाउ घेलणी लालणीए आगा
× × ×
धन तेरी चैंकिए सिहणी रो हियो
छुरी कटारी जिणो जोहरा कियो ।

अब आप को 'बधाई' वाले घर में ले चलें। जहां पुत्ररत्न जन्म होने पर मुंह मीठा किया जा रहा है। सगे सम्बन्धियों को शुभ समाचार पहुंचा दिया गया है। लोग जूब ला कर पिता की टोपी पर लगा रहे हैं। कोई मेहमानवाजी में व्यस्त है तो कोई पण्डित खोजने जा रहा है। हां, ब्राह्मण ही तो हिन्दू-परिवार में ग्रह-दशा खोज कर नाम रखता है।

जूबौ आंशों गिनींयो गढ़ी रं वाए
जूबौ रे डालठं टोपूए लाए
एकी जोठे आदमीए भादौ री आखो
× × ×

ब्रज व उत्तर-प्रदेशीय लोक-साहित्य की भांति जहां लोकगीतों व गजरे में कृष्ण-लीला के रचयिता कृष्ण की सुन्दरता देख-देखकर नहीं थकते और फिर माता उसे गाय चुगाने भेजती है, उसी प्रकार यहां भी मां के मन में मातृत्व-स्नेह की भावना

जागृत है। वसे भी दूर-दराज हिमप्रांगण में जन्मा बालक गाय, भेड़ के साथ गुफाओं, कन्दराओं व प्राकृतिक फलों का रस ले कर ही जीवन प्रारम्भ करता है।

देखणें रात्ती ठिबा तावि रा तेलौ
टेके-हांडो भितरी बाउड़ी खेलौ
हेबी स लोकड़ा गाबे बेधाला
जबे आला बडड़ा लाणा बढ़ाला ।

आजीविका-उपार्जन मानव जीवन का नींव-आधार है। पुरातन काल से ही अधिकांश म्हासुवी लोगों का पेशा भेड़-बकरी चुगाना रहा है। एक 'फवाल' की मार्मिक जीवन-गाथा का वर्णन करता हुआ लोक-कवि कहता है कि—आज बेचारे के जीवन-क्षणों का दुःख जैसे इन भेड़-बकरियों को भी हो रहा है।

भेड़े मेरी मोलीए हेड़ो थो जाणें
केतौ आथो चूतड़ा कि आथो लो पाणें ।

भेड़-बकरियां चुगाने हेतु वनों में सीमांकन होता था। यदि एक ग्राम-हलके की भेड़ें दूसरे क्षेत्र में प्रवेश करतीं तो इन्हें भिड़न्त के लिए तैयार रहना पड़ता था, या मुआवजा देना पड़ता था–

भेड़े मेरे मोलं ऊनों रे चट्ट ।ए
छीमो रं डमेड़ूआ तां मांजी आए ।

इस का उत्तर दूसरा पक्ष देता है–

इच्छी देसे ओयरे इच्छी देसे भेड़ी
अबं नेंई मिलौ ठिण्डा हेरे लागौ केरी ।

सामाजिक वीरता का चित्रण करने में लोक-कवि अक्षरशः सफल हुए हैं। एक युवती का सामना जंगल में एक बाघ से हुआ। दोनों में हाथापाई हुई। बाघ ने स्त्री के वस्त्र स्थान-स्थान से नोंच डाले। यहां तक कि लाज ढांपने के लिए भी शरीर पर लीर तक शेष न रही। युवती ने मुंह में दराट दे कर बाघ का जबड़ा चीर डाला। बाघ घायल हो कर मर गया, वह बेचारी अचेत पड़ी रही। कुछ क्षणों उपरान्त युवती का भाई उसे ढूंढता हुआ वहां पहुंचा, बेचारी लाज के मारे मुंह में उंगली दे कर मर गई। देखा आप ने वीरता का प्रभाव! उस समय का नेशनल अवार्ड उसे यही मिला कि आज तक लोक-कवि ने उस की वीरता अमर कर दी। इसी प्रकार का एक वीर योद्धा शेर को तिलांजली देता हुआ कहता है –

......बाण्डों बिणो बरचुए आथणो नाथों
ए ओ मेरी जिड़गी रो बाजने रो हांभो ।

एक बार अकाल ने त्राहि-त्राहि मचा दी। लोग अमृत की बूंद के लिए यज्ञ-पूजा-पाठ करने लगे। लोगों का विश्वास था कि नाग-देवता की पहुंच इन्द्र देवता तक है। शायद उन की मिन्नत से इन्द्र जल बिन्दु बरसा कर धरा को हरा-भरा कर देंगे :–

लिखी देओले हुकमों भरोली रे राजे
बिजी पड़ी गलीया नागा बरशो न पाणे ।

महासू के त्यौहार, मेले (बिशू, रयाली, दिवाली, नवरात्रे व शिवरात्री) का विशेष स्थान है। शिवरात्री में पकवान (बड़े, पोलडू मालपूड़े) आदि शिव को चढ़ाए जाते हैं तथा फिर किलटी (ध्याणों के लिए) दी जाती है। शिवरात्री में रमा हुआ शिवभक्त अपने आराध्य देव के गीत गाते-गाते नहीं थकता।

सांईं आओ आपणे घरे जी. . .
साईं इका मांगू लै बरौ जी।

आइये, मैं आपका परिचय एक पन्द्रह सोलह वर्षीय कन्या से कराता हूं। जिसे अपने लिवास (ढाठू, चवकन, गाची) से आकर्षक दूसरी वेश-भूषा लग रही है। साथ ही वह अपना वैवाहिक सम्पर्क एक पठान से करना चाहती है। शायद इसलिए कि उसे पठान की वेश-भूषा कहीं ज्यादा आकर्षक लगी है:—

इन भी पठाणों रं भाइयो ड़ेउवी थी आमें
सवरी ओ कूरते पंनू खूलं पजामं ।

इस प्रकार लोकगीतों में समाज-चित्रण के असंख्य उदाहरण दिए जा सकते हैं। लोक-गीत हर पहलू को प्रतिबिम्बित करते हुए लोक-साहित्य की निधि बन गए हैं। दूसरे शब्दों में लोक-गीत लोक-कवि के रचनात्मक काल के समाज, जन-जीवन का वृत्तान्त या थाती है। इस निधि की खोज में हमें गहरे से गहरा जाना है। तभी हम पुरातन समाज के गर्भ से उमदा–उन्नत व सुदृढ़ समाज की परिपाटियां ला सकते हैं तथा आधुनिक समाज के सम्मुख रख कर अपने लिए प्रगतिशील रास्ता प्रशस्त कर सकते हैं।

—रतन मनू,
गोपाल निवास,
शिमला-6

वैष्णो देवी की यात्रा

—दुर्गादत्त शास्त्री,

वैष्णवी देवी का वर्णन मार्कण्डेय पुराण में इस प्रकार आया है—

त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत्।
त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमस्यन्ते च सर्वदा ॥

हे देवि! तू ही इस संसार को उत्पन्न करती है, तू ही पालती है और तू ही इसका संहार करती है।

सृष्टि के सृजन, पालन और संहार के लिये देवी ने ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश को शरीर धारण करने की प्रेरणा दी। ब्रह्मा जी कहते हैं—

विष्णु: शरीर ग्रहण महमीशान एव च।
कारितास्ते यतो ऽतस्त्वां क: स्तोतुं शक्तिमान् भवेत् ॥

हे देवि! मुझे (ब्रह्मा), विष्णु और शिव को तू ने ही शरीर ग्रहण करवाया। इसलिये तेरी स्तुति कौन कर सकता है?

दैत्यों के साथ युद्ध में वैष्णवी देवी का इस प्रकार वर्णन आता है—

'वैष्णवी समरे चैनं चक्रेणाभिजधान ह'

अर्थात् वैष्णवी देवी ने रक्तबीज पर चक्र से प्रहार किया। तब—

वैष्णवी चक्र भिन्नस्य रुधिरस्राव सम्भवै:।
सहस्त्रशो जगद्व्याप्तं तत्प्रमाणैर्महासुरै: ॥

वैष्णवी देवी के चक्र के प्रहार से जब रक्तबीज के शरीर से रुधिर के बिन्दु निकले तो प्रत्येक बिन्दु से राक्षस बन गए और उन हजारों राक्षसों से संसार भर गया। जब वैष्णवी देवी ने असुरों का संहार करके देवताओं का त्राण किया तो उन्होंने इस प्रकार देवी की स्तुति की—

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्त वीर्यं
विश्वस्य बीजं परमासि माया।
संमोहितं देवि समस्तमेत –
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्ति हेतु: ॥

हे देवि! तू अनन्त पराक्रम वाली वैष्णवी शक्ति है। तू संसार का कारण है और परम माया है। यह सारा संसार तेरे द्वारा मोहित है, तू ही प्रसन्न होकर संसार में मोक्ष को देने वाली है।

एषा सा वैष्णवी माया महाकाली दुरत्यया।
आराधिता वशीकुर्यात्पूजा कर्तुं श्चराचरम् ॥

यह वैष्णवी देवी उपासना से प्रसन्न हो जाए तो चर-अचर सारे संसार को पूजा करने वाले के वश में कर देती है।

वैष्णवी देवी की इस महिमा को सुन-पढ़ कर मन में वर्षों से यह आकांक्षा थी कि समय का सदुपयोग करके वैष्णों देवी की यात्रा का लाभ लिया जाए। तीर्थों की यात्रा पुण्य कर्मों तथा भगवत्कृपा से ही सम्भव होती है। इन पावन यात्राओं के लिये गृहणियां भी अनेक बार महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, क्योंकि—

नारी गृहे न तिष्ठे च्चेन्नाप्नु यात्प्रेरणां नर:।
कर्तुं शुभानि कर्माणी भ्रमन्नेव म्रियेत स: ॥

यदि नारी घर में न हो तो मनुष्य को कहीं से भी इस प्रकार के शुभकामों की प्रेरणा न मिले और वह सांसारिक धन्धों में उलझ उलझ कर ही मर जाए। हर कार्य का अपना समय होता है और इसी तरह वैष्णवी देवी की यात्रा का भी सम्भवत: हमारे लिए निश्चित समय हो। हम ईश्वरेच्छानुसार दिनाङ्क 11 अगस्त, 1974 को अपने घर देहरा (कांगड़ा) से देवी के दर्शनों के लिए चले। जैसे शुभ मूहूर्त में आरम्भ किए गए कार्यों का फल भी शुभ ही होता है।

शुभारम्भा: क्रिया: सर्वाजनयन्ति शुभं फलम्।
तस्मात्तथैव लोकेत कर्तुं कर्माणि कोविद: ॥

कुछ वैसे ही अनुभव से हमें सड़क पर पहुंचते ही बस मिल गई। हमारा मन उस दिन अधीर सा वायुगति से भी तीव्र दौड़ रहा था कि कब वैष्णवी देवी जी के दर्शन कर लें। कांगड़ा पहुंचने पर हमें पठानकोट जाने वाली बस मिल गई जिसने सांय काल से पर्याप्त पूर्व हमें पठानकोट पहुंचा दिया। वहां से हम जम्मू जाना चाहते थे। वह भी हुआ। जम्मू और पठानकोट के बीच का रास्ता यात्री के लिए अपेक्षाकृत सुगम है क्योंकि न तो यहां ऊंचे पहाड़ हैं और न ही सड़क की अधिक करवटें। बसों की यात्रा में ऊंच-नीच, धनी-निर्धन तथा सामाजिक बंटवारे के सारे भाव लोप हो जाते हैं। मेरे मन में विचार आ रहे थे कि बसें—

वहन्ति सकलांल्लोकान् भेदभावं बिना सदा:।
उच्च नीचं न जानन्ति सेवाभाव परायणा: ॥

बिना किसी भेद भाव के सब लोगों को उठाती हैं, केवल सेवा करना ही अपना धर्म मानती हैं और ऊंच नीच नहीं जानती है।

रात नौ बजे हम कटड़ा पहुंच गए। कटड़ा वैष्णो देवी जाने के लिए अन्तिम पड़ाव है। इस स्थान पर यात्रियों को रात्रि विश्राम की असुविधा नहीं होती क्योंकि लोग अतिथि-भक्त तथा विनम्र हैं तथा अनेकों कमरे यात्रियों के विश्राम के लिए स्थानीय निवासियों द्वारा बनाए गए हैं। हमें भी एक छोटा सा बालक मार्ग में मिल गया और कहने लगा——

"क्या जी तुसां राती जो ठहरना है? चला मैं धुग्रांजों कमरा लैइ दिग्रां"। बालक की मोहक वाणी पर मुग्ध हो कर हम उस के साथ ही चल दिए——

बालानां मधुरा वाणी वश करोति मानवान्।
विवशा अनुधान्त्येव पृष्ठतः स्नेहविह्वला:।।

बच्चों की मीठी वाणी लोगों को वश में कर लेती है। वह प्यार से व्याकुल, विवश होकर पीछे ही चल पड़ते हैं।

वह हमें एक मकान मालिक के पास ले गया। उन लोगों ने यात्रियों की सुविधा के लिये कमरे बना रखे हैं। कमरों में पंखे तथा बिजली का प्रबन्ध है। एक कमरा हमें मिल गया। हमने किराये के लिये पूछा तो उत्तर मिला, "जो आपकी इच्छा हो दे देना। माता के लिये भेंट पूजा लेनी ही हो हम ही ले देंगें"। यह बात सुन कर हम उन की सज्जनता से बहुत प्रभावित हुए। दस मिन्ट विश्राम कर के हमने कमरे को ताला लगाया और भोजन करने के लिये नगर में गये। वहां बड़े बड़े भोजनालय हैं हमने एक होटल वाले से पूछा, "क्यों जी, यह वैष्णव होटल है?" उस ने उत्तर दिया, "महाराज यहां लहशुन और प्याज तक आपको नहीं मिलेगा मांस की तो बात ही क्या! यहाँ सब होटल वैष्णव ही हैं"। हम उस की बात सुनकर मुग्ध हो गए। पठानकोट के मांसाहारी होटलों का जो प्रभाव हमारे मन में समाया था वह कटड़ा आकर घुल गया—

न मांसं लशुनं तत्र पलाण्डुर्नैव भक्ष्यते।
सात्विकं भोजनं भुक्त्वा वैष्णवीं यान्तियात्रिणा:।।

हमने भोजन किया और एक गली से कमरे को जा रहे थे तो अचानक एक यात्री ने पूछा, "क्या आप पर्ची ले आए हैं"? मैंने पूछा, "कैसी पर्ची"? उसने कहा, "क्या आप वैष्णो देवी नहीं जाएंगें"? मैंने कहा, "हां जाएंगें"? तो उसने कहा, "जल्दी टूरिस्ट सैंटर जाओ और पर्ची ले आओ फिर सैंटर बन्द हो जायेगा। और बिना पर्ची के आप वैष्णो-देवी न जा सकेंगें"! हम शीघ्रता से सैंटर गये और पर्ची लें आए। पर्ची प्राप्त करवाने में एक दुकानदार ने हमारी सहायता की। वह भेंट पूजा बेचता था। उसने कहा "मुझ से भेंट पूजा ले लो"! हमने उस से नारियल वगैरह खरीद लिया। जब कमरे में आए तो हमारे हाथ में नारियल देखकर मकान मालिक बिगड़ उठा और कहने लगा "मैंने आप को कहा था कि भेंट पूजा हम खरीद देंगे, आप बाहिर से क्यों ले आए? अब रात तो तुम काट लो और सवेरे अपना सामान रखने का कोई और प्रबन्ध कर

लेना, हम आपका समान नहीं रखेंगें"। मैंने झट कहा, "पंडित जी, हम दोनों ने अलग-अलग भेंट चढ़ानी है। पंडितानी तो ले आई और मैं आप से खरीद करूंगा। यह लो पैसे और दो भेंट पूजा"। एक नारियल और पूजा का सामान हमने उनसे भी खरीद लिया और पंडित जी के कोप से छुटकारा पाया—

कर्मणि विकटे प्राप्ते न वित्तं चिन्तयेद् बुध:।
कदाचित् वित्तलोभात्स महति संकटे पतेत्।।

कोई विकट काम सामने आ जाये तो बुद्धिमान को चाहिये कि वह पैसे के बारे में न सोचे। धन के मोह में हो सकता है वह किसी बड़े संकट में गिर जाए। हमने अपने कमरे मे प्रवेश किया और बिस्तर लगा कर सो गये। विचार बनाया कि प्रातः चार बजे उठकर चल पड़ेंगें।

प्रातः चार बजे जब नींद खुली तो मूसलाधार वर्षा लगी हुई थी। छः बजे तक वर्षा ही होती रही। कटड़ा के सारे नगर में पानी ही पानी दिखाई दे रहा था। सात बजे हमने सामान मकान मालिक के पास रखा और पैदल ही चल पड़े। कटड़ा से वैष्णोदेवी चौदह किलोमीटर है। सारा रास्ता चढ़ाई का ही है। पौड़ियां चढ़ते-चढ़ते आदमी का सांस फूल जाता है। पौड़ियों के किनारे किनारे कोई चार पांच फुट चौड़ी पट्टी बनी हुई है। उस पर घोड़े चलते हैं। हम जैसे कैसे चरणपादुका पहुंच गये। कहते हैं कि गुफा को जाती बार देवी यहां खड़ी हुई थी तो उसके पैरों के यहां निशान पड़ गये थे। इसलिये इस को चरणपादुका कहते हैं। यह स्थान कटड़ा से दो किलोमीटर है। यहां तक पौड़ियां चढ़ते-चढ़ते हम थक गये।

मैंने सोचा कि मंदिर तक हम पैदल पहुंच न सकेंगें। इतने में ही दो घोड़े वाले आकर कहने लगे, "क्यों जी, आप घोड़े करना चाहते हैं? मैं बहुत प्रसन्न हुआ घोड़ों का सरकार ने रेट नियत किया हुआ है। एक घोड़े के एक ओर के 15 रुपये 80 पैसे देने पड़ते हैं। हमने घोड़े कर लिये और चल पड़े। घोड़े की पीठ पर बैठे हुए मेरे मन में कई भाव उठने लगे। मैं सोच रहा था, "धन्य यह पशु है जो इतना बोझ पीठ पर उठाए हुए सीधी चढ़ाई चढ़ रहा है। क्या इसकी सहायता के बिना श्रद्धालु अपनी श्रद्धा का फूल माता को चढ़ा सकते हैं? क्या इस शुभ कार्य का फल इस मूक पशु को भी कुछ मिलता होगा? क्या इस निरीह पशु की पीठ पर बैठ कर मंदिरों में जाना सत्य ही धर्म का अंग होगा"? इस प्रकार के प्रश्नों के भार से मेरा मन दबा जा रहा था। और भी बहुत से यात्री घोड़ो पर सवार थे।

पशवो-निरीहा एते सेवन्ते मानवं सदा।
एतेषामुपकारस्य निस्तारोऽत्र कथं भवेत्।।

यह भोले-भाले पशु मनुष्य की सदा सेवा करते हैं। इस संसार में इनके उपकार का बदला कैसे चुकाया जाय? दस बजे घोड़े आधकंवारी (आदि कुमारी) पहुंच गये। कुछ देर वहां विश्राम किया। यहां आते जाते सभी यात्री थोड़ी देर रुकते हैं। बहुत से रात्रि को विश्राम भी करते हैं। इस के बारे में कहते हैं कि आदिशक्ति चरणपादुका

से चल कर यहां कुछ देर रुकी थी। भैरों अपने गुरू की आज्ञा से उसका पता लगाने के लिये पीछा कर रहा था। यहां एक तपस्वी तप करता था। माता उसको कह गई थी कि मेरे बारे में कोई पूछेगा तो बताना नहीं। भैरों ने उस तपस्वी से पूछा, "क्या इधर से कोई औरत गई है" ? इस प्रश्न पर तपस्वी को बड़ा गुस्सा आया। उसने कहा "अरे मूर्ख, तू आदि-शक्ति को औरत कहता है, वह तो आदि अन्त कुवारी है"। भैरों माता को ढूंढता हुआ आगे चला गया और इस स्थान का नाम आध कुंवारी (आदि कुमारी) पड़ गया यह स्थान बड़ा सुन्दर है। यहां टूरिस्ट सैंटर भी है। यात्रियों को रहने की सब सुविधांए मिलती हैं। सरकार ने यात्रियों को सुख-आराम पहुंचाने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। आधा घंटा विश्राम के अनन्तर घोड़े वहां से चल पड़े । एक स्थान पर मैंने घोड़े वालों से पूछा "क्यों भाई, यह आपके ही घोड़े हैं? उत्तर मिला, "नहीं जी, हम गरीब लोग घोड़ा क्या रख सकते हैं, यह घोड़े अमीर लोगों ने पाल रखे हैं, हम लोगों को तो कुछ कमीशन ही मिलता है और बाकी रकम उनको ही देनी पड़ती है।" मैंने सोचा कि यह लोग भी धन्य हैं जो प्रति दिन घोड़ों के साथ चौदह किलोमीटर पैदल ऊपर चढ़ते हैं और उतरते हैं। इस पेट के लिये मानव को कितना घोर परिश्रम करना पड़ता है—

एतस्य जठरस्यार्थे किं न कुर्वन्ति मानवाः ।
पर्वतानाधिरूह्यापि पालयन्ति कुटुम्बकम् ।।

इस पेट के लिये मनुष्य क्या नहीं करते हैं? पहाड़ों पर चढ़ कर भी अपने परिवार को पालते हैं।

रास्ते में बड़े-बड़े पहाड़ हैं। मानों वह एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिये ही इस ढंग से ऊपर उठे हुए हैं—

एको वदति मां पश्य द्वितीयो भाषते तथा ।
एवं स्पर्धाग्रहग्रस्ता अध्वनि पर्वताः स्थिता ।।

पहाड़ एक दूसरे को इस प्रकार कहते हुए मालूम होते थे—एक कहता है तू मुझे देख मैं कितना ऊंचा हूं। दूसरा भी इसी प्रकार कहता है । इस प्रकार रास्ते में पर्वत स्पर्धा के ग्रह से ग्रसे हुए ठहरे हैं ।

पहाड़ों को पार करते और चढ़ाई चढ़ते हमारे घोड़े साढ़े बारह बजे वैष्णवी जी के धाम पहुंच गये। हमने लौटती बार पैदल ही आने का विचार बनाया था इसलिये घोड़े वालों का पैसा चुकता कर दिया। सबसे पहले हमें सरकारी कार्यालय में यात्रा-पर्ची दिखानी पड़ी। इसी पर्ची को चरणपादुका से पहले भी एक बार देखा गया था। पर्ची हम से ले ली गई और हमें माता जी के मन्दिर में जाने की आज्ञा मिल गई।

मंदिर की गुफा में से पानी का बड़ा प्रवाह बाहर आता है । गुफा में प्रवेश से पहले यात्री वहां स्नान करते हैं । हमने भी स्नान कर लिया । गुफा एक सौ फुट के लगभग लम्बी है और बहुत तंग है। दो आदमी आमने सामने खड़े हो कर नहीं जा

975

सकते। एक दूसरे को रास्ता देने के लिये शिलाओं पर टेढ़ा होना पड़ता है। गुफा में एक बार केवल बीस पच्चीस आदमी ही प्रवेश कर सकते हैं इसलिये वहां पंक्तियों में बैठना पड़ता है। एक घंटे की प्रतीक्षा के बाद हमारी बारी आ गई। गुफा के द्वार पर पहुंचे। प्रवेश करते समय पहले तो कुछ भय लगा परन्तु अन्दर जाकर माता जी के जय जयकार से भय दब गया। प्रत्येक यात्री के मुंह से प्रति पल जय जयकार की ध्वनि निकलती है। इसके दो कारण हैं—माता जी के प्रति आस्था और गुफा में खड़े होने का भय जिस से अनायास मुंह से "जय माता दी" निकलता रहता है। दस मिन्ट घसीटने के बाद माता जी की मूर्तियों के पास पहुंच गये। वहां कुछ खुली जगह है और चार पांच आदमी इकट्ठे बैठ सकते हैं। हम वहां दस मिन्ट बैठे और माता जी का पूजन किया पुजारी ने हमें बताया कि यह तीन मूर्तियां (पिंडियां) हैं। एक सरस्वती की दूसरी वैष्णवी की और तीसरी काली की। पुजारी से प्रसाद लेकर हम फिर बाहर आने के लिये घिसटने लगे और आने वाले यात्रियों के लिये टेढ़े-मेढ़े हो कर रास्ता देते हुए बाहर आ गये। गुफा के द्वार पर एक पुजारी बैठा था उसने कहा, "यहां अरदास चढ़ाओ" मैंने संभवत: एक चवन्नी चढ़ाई तो वह रुष्ट हो गया, कहने लगा। "यहां दस बीस पैसे से काम नहीं चलता है, यदि अरदास करवानी है तो कम से कम एक रूपया तो चढ़ाओ"। मुझे उसका यह तर्क अच्छा न लगा । मेरे विचार में मंदिरों में पैसे के लिये यात्रियों को विवश करना अच्छा न होता होगा—

मंदिरेषु न कर्तव्यो धनार्थमाग्रहो महान् ।
क्वचिद् रुष्टा न देवास्युर ध्यातव्यं देव पूजकैः ।।

अर्थात् मंदिरों में पैसा बटोरने के लिये बड़ा हठ नहीं करना चाहिये। पुजारियों को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि कहीं ऐसा करने से देवता रुष्ट न हो जाए। परन्तु बाद में उसे एक रुपया दे दिया और उसने हमारे कल्याण के लिये माता जी से अरदास कर दी।

मंदिर के प्रांगण को छोड़ कर हम हलवाई की दुकान पर आए। देसी घी का कड़ाह-पूरी आठ रुपये किलो सुन कर हम दंग रह गये। यह बहुत ही सस्ता था। हमने कड़ाह-पूरी ले कर कन्याओं को दिया और फिर आप भी खाया । वहां कन्याएं दूसरे मंदिरों की तरह हाथ फैला कर पैसा नहीं मांगती हैं जो कुछ कोई दे उसी को स्वीकारती हैं। यह बात मुझे अच्छी लगी। तीन बजे हमने वहां से पैदल यात्रा आरम्भ कर दी । वैष्णोदेवी जी के मन्दिर से कोई दो किलोमीटर दूरी पर जंगल में भैरों का मंदिर है। लोग आती बार उधर से होकर निकलते हैं।

हम कभी पौड़ियों से और कभी पक्की पट्टी से नीचे उतरने लगे। चलते चलते हम हाथी-मत्था पहुंच गये। यहां तो बिल्कुल सीधी चढ़ाई है इसलिये इसको हाथी-मत्था कहते हैं। जब हम आध-कंवारी पहुंचे तो बड़े जोर की वर्षा लग पड़ी। हम कुछ देर रुक गये। वर्षा थमने वाली न थी इस लिये हम छतरियां तान कर चल पड़े । हमारे कपड़े भीग गये ।

रास्ते में जो अद्भुत दृश्य दिखाई दे रहा था—वह था यात्रियों का तांता । हमने एक फर्लांग का मार्ग भी ऐसा न देखा जिसमें दस पचास यात्री हमें न मिले हों। इतनी भारी वर्षा में सिर से पैर तक भीगे हुए नर और नारियां, बच्चे बूढ़े सुध-बुध खो कर "जय माता दी" "जय माता दी" बुलाते हुए ऊपर चढ़ते जा रहे थे। मानों वह माता से एकाकार हो चुके हैं और उन्हें अपने शरीर की कोई सम्भाल नहीं है। हाथ में बांस की लाठी लिये हुए और पैरों में फ्लीट पहने हुए युवतियां अजीब दिखाई दे रही थीं। चढ़ाई चढ़ने में सहारे के लिये बांस की लाठियां और पैरों में पहनने के लिये फ्लीट कटड़ा में किराये पर मिलते हैं। पैदल जाने वाले सभी लोग इन्हें लेकर आते हैं और वापसी पर दे देते हैं। कुछ युवतियां ऐसी भी दृष्टि में आईं जो मेरे अनुमान में घर पर पानी का गिलास भी नौकर-चाकरों के हाथ से पीती होंगी और कभी एक प्लेट भी एक स्थान से उठा कर दूसरे स्थान पर न रखती होंगी परन्तु यहां बिना छाते के ही वर्षा की बून्दों के तेज प्रहार को सहती हुई पैदल ही पहाड़ों पर चढ़ रही थीं। मैंने सोचा यह वैष्णवी माता धन्य है जिसने इस प्रकार लोगों को श्रद्धा के सूत्र से अपनी ओर खींच लिया है। भारत के सभी प्रान्तों के लोग इसकी ओर खिंचे आते हैं। हम रास्ते के विविध दृश्यों को देखते हुए साढ़े छः बजे कटड़ा पहुंच गये। मकान मालिक से सामान लिया और उसी कमरे में आसन जमा लिया। कुछ देर विश्राम करके हमने नगर में जा कर भोजन किया। फिर दिन की स्मृतियों की मधुर झलक मस्तिष्क में लिये हुए हमने निद्रा देवी से भेंट करने की सोची। आंख लगने से पहले मेरे मुंह से निकला :—

धन्यासि मातः शृणु वैष्णवि त्वं
त्वत्तोऽपि धन्या ननु भक्तलोकाः ।
गुप्तोऽपिवासो विहितो गुहाया-
मन्वेषिता तैर्नकृतो विलम्बः ॥

हे वैष्णवी माता, तू धन्य है परन्तु भक्त लोग तुझ से भी धन्य हैं । तूने गुफा में जा कर गुप्त निवास किया था परन्तु भक्त लोगों ने तुझे वहां भी ढूंढ लिया, जरा भी देर न लगाई ।

—हाई स्कूल बेहरा गोपीपुर,
जिला कांगड़ा,
(हि० प्र०) ।

विविधा

जसमा ओडन-रंगमंच पर

लोकगाथाओं व लोककथाओं को आधार मान कर लोकनाट्यों का प्रचलन हमारे प्रदेश में नया नहीं है। सत्य तो यह है कि है अनेक गाथाएं जन-समाज में केवल नाट्यों के रूप में ही प्रचलित हैं और उनकी कड़ियां स्वतन्त्र लोक-मंच पर उभरती रही हैं तथा लोकसाहित्य में महत्वपूर्ण स्थान बनाए हुए हैं । नाटी, चन्द्रावली, करयाला, बांठडा तथा रास आदि अनेक लोकनाट्य किसी न किसी कथा के आधार पर प्रचलित हुए हैं, भले ही अब मूल कथा परोक्ष रह गई हो । हिमाचल में जो स्थान 'करयाला' का है वैसा ही स्थान महाराष्ट्र में 'तमाशा' तथा गुजरात में 'भवाई' का है । पश्चिमी राजस्थान और गुजरात में 'ओड' नाम की एक आदिम जाति रहती है। यह तालाब, कूएं तथा मकान आदि बनाने का कार्य करती है। इस जनजाति से सम्बन्धित लोककथा के आधार पर हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी के तत्वावधान में राष्ट्रीय नाट्य स्कूल (नेशनल स्कूल आफ ड्रामा) के छात्रों ने 'जसमा ओडन' नाटक का सफल अभिनय इस प्रदेश के चार स्थानों में गत मास किया । शिमला में आयोजित इस नाटक को देखने के लिये कालीबाड़ी हाल में न समा सकने वाली भीड़ थी । सोलन, नाहन, तथा कुल्लू में भी अपार भीड़ ने नाटक का स्वागत किया। नाटक की कथा बहुत साधारण है जिसके अनुसार 'ओड' जाति की एक लड़की जसमा का विवाह श्राप-वश एक अपङ्ग से हो जाता है और वह अपने संस्कारगत स्वभाव से उसे अपना आराध्य-देव स्वीकार करती है । राजा जसमा के सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है और उसे प्राप्त करने के लिये 'ओड जाति' के लोगों को तालाब बनाने के लिए बुलाता है। अन्त में 'ओडों' की विजय होती है और मर्यादाओं की रक्षा हो जाती है।

इस नाटक का महत्व इसलिए अधिक है कि यह जन-मानस की अभिव्यक्ति है। हमारे प्रदेश में लोकगीतों, गाथाओं तथा लोक कथाओं के अनेक रूप प्रचलित हैं। इन कथाओं के आधार पर हम सुन्दर लोक नाट्य प्रचलित कर सकते हैं, 'जसमा ओडन' का यही सबसे बड़ा सन्देश है।

× × ×

विष्णु—पुराण-गाथा के प्रतीक

हिन्दु मिथक में ब्रह्मा, विष्णु, महेष की परिकल्पना ने भारत की चिन्तन-शैली और भाषा-दक्षता को प्रभावित किया । इन तीनों का महत्व देवगाथागत महत्व के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी बहुत स्पष्ट और सत्य है । उदाहरणार्थ नटराज शिव वाणी के अधिपति होने के नाते बागेश्वर कहलाते हैं, परमयोगी होने के नाते परमयोगेश्वर कहलाते हैं, नृत्यकला में निपुण होने के नाते नटराज कहलाते हैं, सभी पदार्थों के स्वामी होने के नाते भूतनाथ कहलाते हैं। वैद्यनाथ भी उन्हीं की ही एक उपाधि है, इसी तरह विष्णु की अनेक उपाधियां हैं । मानव के रूप में उनका पूर्ण अवतार कृष्ण है जिनकी रास-लीला आध्यात्मिक संदर्भों से ओत-प्रोत है । हिमाचल प्रदेश में शिव शक्ति, विष्णु और बौद्धमत से निसृत नाथ सिद्ध सम्प्रदायों का समय समय पर प्राधान्य रहा है । इस प्रदेश के छोटे नगरों में और तथा-कथित अभिजात्य श्रेणियों में वैष्णव जीवन शैली का प्राधान्य है । वैष्णव-जीवन शैली अपने सहज माधुर्य के कारण सभी-जनसमूहों के द्वारा ग्राह्य बन जाती है ।

विष्णु पुराण के अनुसार अनादि शाश्वत क्रिया-धर्म को 'हरि' कहा गया है । जब हरि सृष्टि रचते हैं तो ब्रह्मा कहलाते हैं, संरक्षण करते हैं तो विष्णु कहलाते हैं, संहार करते हैं तो शिव कहलाते हैं ।

विष्णु एक संशक्तिशील शक्ति है । इसी शक्ति से जीवन संसिक्त रहता है । यही शक्ति ब्रह्मांड में नारायण है, वेदों में सूर्यदेव है और मानवाकार में कृष्ण है । हरि की संरक्षण-शील शक्ति एवं संसिक्तशील शक्ति अर्थात् विष्णु की सर्वाधिक पूजा होती है । निर्पेक्ष रूप में हरि निराकार, दिक्काल और संस्कार से परे की शक्ति है । जब कभी यह शक्ति समसामयिक विचार और जीवन को दिशा और अर्थ देने के लिए एक विशिष्ट आकार धारण करती है तो अवतार कहलाती है । नर रूप में आकर हरि की वह संशक्तिशील शक्ति पाप का विनाश करती है, धर्म का उत्थान करती है दुष्ट का संहार करती है और संत को सिंहासन देती है ।

अस्तित्व की प्रत्येक अवस्था में प्रविष्ट रहने के कारण विष्णु का सर्वाधिक महत्व है । शयन, स्थानक और आसन तीन मुद्राओं के अनुसार उनकी तीन प्रकार की मूर्तियां हैं । ये अभिचार, योग और भोग तीन अवस्थाओं की परिचायक हैं । चार दिशाओं, जीवन के चार उद्देश्यों, चार वेदों, चार युगों और इतिहास के चार खण्डों के अनुरूप ही प्रतिमा में विष्णु की चार भुजाएं हैं । उनमें शंख, चक्र, गदा, कमल अथवा धनुष चार चिन्ह दर्शाये जाते हैं जो एक विशिष्ट अर्थ-भावनाओं के प्रतीक माने गए हैं । शंख सर्जनशील पांच तत्वों का प्रतीक है और चक्र-चेतना का प्रतीक है । गदा वैयक्तिक सत्ता की प्रतीक है । कमल गतिशील ब्रह्मांड को प्रतीकित करता है । धनुष एक संश्लिष्ट प्रतीक है । तुणीर हमारे कर्मों का

भण्डार है । बाण हमारी इन्द्रियां हैं और धनुष है माया की विघटन विनाशक शक्ति ! विष्णु के वक्ष पर एक चमकती मणि "कोस्तुभ" है जो विश्व की प्रत्येक ज्योति की चेतना का प्रतीक है । प्राकृतिक विश्व की भोग्य वस्तुओं का प्रतीक श्री वत्स है। गले की वैजयंती माला उनकी दिव्यशक्ति की प्रतीक है ।

ज्ञान और प्रतिभा के प्रतीक उनके दो कुण्डल हैं । उनकी अज्ञेय परमसत्ता का प्रतीक मुकुट है। हाथ में कंगन सफलता और धर्म के प्रतीक हैं । वेद रूपी पीताम्बर से दिव्य सत्ता का प्रतीक उनका शरीर ज्योतिर्मान है ।

—विद्या शर्मा

"In The Indian tradition while men aspired to be gods or at least godly in life, gods wanted to come down to the level of men and live with them."

—Nihar Ranjan Ray

हमारा सूक्ति-संसार

अंग्रेजी भाषा में एक कहावत है—'संक्षिप्तता प्रतिभा की आत्मा' है। प्रतीत होता है—कहावतें व मुहावरे इसी धारणा के आधार पर प्रचलित हुए हैं। जो बात लम्बे व्याख्यानों में घण्टों में नहीं कही जा सकती उसे एक वाक्यांश में ऐसे प्रभावोत्पादक ढंग से कह देना कि सुनने वाला उसका भाव एक दम ग्रहण कर ले और उसके अनुसार कार्य करने के लिये बाध्य हो जाए अथवा उसका प्रभाव श्रोता के मन-मस्तिष्क पर अपेक्षाकृत अधिक समय तक बना रहे—कहावत कहलाती है। कहावतें व मुहावरे किसी भी भाषा के अलंकार-आभूषण होते हैं। सूक्तियां ऐसे मुहावरे होते हैं जिनसे हमें शिक्षा मिलती है, कार्य की दिशा प्राप्त होती है और वह भावस्थल उपलब्ध होता है जिसके वशीभूत होकर हम अपने कार्यों को सुव्यवस्थित तथा सुनियोजित कर सकते हैं। पहाड़ी भाषा की एक बड़ी विशेषता यह भी है कि यह सूक्तियां व मुहावरों का अगाध कोष संजोये हुए है। प्रत्येक उपभाषा क्षेत्र में अथाह राशि उपलब्ध है। इस स्तम्भ में हम प्रयत्न करेंगे कि विभिन्न जनपदों से मूल्यवान सूक्तियों को लेकर उन्हें पृष्ठभूमि सहित प्रस्तुत किया जाए। इसी सन्दर्भ में कुछ सूक्तियां दी जा रही हैं:—

—सम्पादक

1. **स्याण्यां रा गलाइरा कने अमले रा स्वाद**
पिच्छे ते ही आवां हां—

बूडे बूढ़े अनुभवी होते हैं। वे जो बात करते हैं, मूल्यवान होती है परन्तु कई बार लोग उनकी बात को समझ नहीं पाते और उसे सुना अनसुना कर देते हैं। यही हाल आमले का होता है, जब आमला खाया जाता है तो उसमें कड़वाहट प्रतीत होती है परन्तु अन्त में वह स्वादिष्ट लगता जाता है ठीक वैसे ही जैसे कि बुद्धिमानों के कहने का फल बाद में अच्छा लगता है।

2. **काठा रा बिल्लू ता बणाइए पर म्यांऊं किसते कराइये—**

बहुत समझाने पर भी जब किसी के द्वारा कार्य-पूर्ति होती न दिखाई दे तो ठीक ही है कि लकड़ी की बिल्ली तो बनाई जा सकती है पर 'म्यांऊं' किससे करवायें, उसके लिये प्राण-शक्ति चाहिये।

3. **बसरमा रे सिरा पर जम्यां डाल़ तिने बोल्या मिंजो छांव हुई—**

बेशरम व्यक्ति तो किसी भी प्रकार हार नहीं मानता। यदि उसके सिर पर वृक्ष भी उत्पन्न हो जाए तो भी वह यह समझ कर प्रसन्न होगा कि उसे तो हर समय छाया मिलेगी।

4. **हड्डे गोड़्यां बही तां राम जपणे डही——**

जब हाथ पांव शक्ति हीन हो गए तो राम नाम का ध्यान आया।

5. **घरें रुस्सी बणां बैर नीं खाओ—**

नराजगी किसी से और क्रोध किसी पर। घर में रूठना और वन में बैर न खाना।

6. **सै जे लगे बगान्यां बोलें,**
सै गै बजवैयां ढोलें—

जो दूसरे के कहने पर कार्य शुरू करते हैं वे हानि उठा कर जग-हंसाई कराते हैं।

7. **वाही थी नसाणा लग्गो प्राणा—**

चोट तो निशाने पर लगाई थी परन्तु अपने प्राणों को ही ले डूबी। जब किसी के प्रयत्नों से लाभ के बजाए हानि हो जाए तो यह कहा जाता है।

8. **इक ता औणा बिणा सदेयां**
दुज्जे गौणे बुरे बोल।

एक तो बिना बुलाए हुए आना और दूसरे बुरी बातें कहना आरम्भ कर देना।

मुइए मेखे तू किसरे लेखे—

जब किसी को महत्वपूर्ण कार्य के लिये सम्मिलित नहीं किया जाता तो उसका अपमानति अनुभव करना स्वाभाविक ही है। छोटी सी चीज़ को कौन महत्वपूर्ण समझता है।

10. **चन्दरे रे पन्दरा भोले रे सोल़ा—**

कोई भले ही कितना चालाक हो, भोला व्यक्ति उससे अधिक लाभ में रहता है। प्रकृति उनकी सहायता करती है जो चलाकी नहीं जानते। भाग्य से कभी चालाक व्यक्ति से भोले व्यक्ति को अधिक लाभ प्राप्त हो गया। इसी पृष्ट-भूमि में यह कहावत चल पड़ी

11. **फूहड़ चले ता सत्त घर हिल्ले——**

जब कोई व्यक्ति उठकर चलने लगे और इधर उधर टकरा कर नुकसान करे तब यह सूक्ति कहीं जाती है। इसके प्रभाव के अन्तंगत चलने वाला सावधानी से चलता है और तोड़ फोड़ से घबराता है क्योंकि नहीं तो लोग उसे फूहड़ (असभ्य) कहेंगे।

—'अनजान'

A proverb is the interpretation of the words of the wise.

—Bible

अकादमी की गतिविधियां

धर्मशाला में दिनांक 1 मई, 1975 को हिमाचल साहित्यकार परिषद् के सहयोग से हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी द्वारा एक कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस अवसर पर राजस्व मन्त्री, हिमाचल प्रदेश सरकार श्री देसराज महाजन मुख्य अतिथि थे।

कवि सम्मेलन में निम्नलिखित कवियों ने भाग लिया :—

1. डा0 पीयूष गुलेरी
2. डा0 गौतम शर्मा 'व्यथित'
3. श्री सागर 'पालमपुरी'
4. श्री प्रीतम चन्द 'प्रीतम'
5. श्री प्रत्यूष गुलेरी
6. श्री कुलभूषणचन्द्र 'कायस्थ'
7. श्रीमती शशि प्रभा 'अंशु'

कवि सम्मेलन का संचालन डा0 पीयूष गुलेरी ने किया। उनकी कविता 'पींहँगाँ दा गीत' श्रोताओं ने खूब सराही। पींहग के हिलोरों की तरह उनकी इस लयबद्ध कविता ने वातावरण को 'सावनी' बना दिया। कुछ अंश द्रष्टव्य हैं :–

लोकी पौन्दे हन बमार, बिच्छो म्हारियां हक्खीं चार ।
अम्मा अम्मा दा एह प्यार खूब झोक्के लैंणे न ।।
× × × ×
पींहगा सौगी आ नें जा, कोई नौंआं कम कमा ।
आ, आ तौला तौला आ, खूब झोक्के लैंणे न ।।

गौतम शर्मा 'व्यथित' की कविता 'पच्छैंण' आज के सन्दर्भ में सूक्ष्म दृष्टि का फल है–

पच्छैंण

बदला दी नौएं ब्याड़ें
नौईं मुहार

जीणे दे हर खेतरे च
बदलोंदे जा दे
इसा दे बन्ने
पैसा, फैसन, बणक, ठणक
सट्टा दे जरेबां
छेतरफले दे गुर
बदलोआ दे
नौइयां तकोणा पर टंगोया
माहणुयें दा
सुवरंगी जीण
अपणे आपे पर हस्सा दा ।

श्री सागर पालपुरी की गजल 'दुख–सुख कुस कने लाणा ओ, माहणु पखले देस बगाना ओ,' की अन्तिम दो पंक्तियां श्रोताओं के लिए महत्वपूर्ण सन्देश छोड़ती हैं :–

दुख 'सागर' सभनी दे बण्डणे
कजो दिल कुसी दा दुखाणा ओ ।

श्री प्रीतम चन्द 'प्रीतम' की गजल 'तेरे प्यारे ते क्या क्या नी पाया असां, कम नौंए ते नौआं कमाया असां।' सस्वर पाठ के कारण अधिक रोमाण्टिक हो गई । विरह में कवि ने क्या कुछ नहीं किया।

आई निन्द्रा च नजरी जे सूरत तेरी ,
पूरी रात आप अपणा जगाया असां ।

श्री प्रत्युष गुलेरी की कविता 'देश मेरे दे नौआं लाल' वर्तमान सामाजिक स्थितियों पर 'नये लाल' का आह्वान है :–

हारेयो नेता, करा दे
कौलज खलाई नें
शिक्षा दी उसारी ।
होआ दे माला माल—

श्री कुलभूषण चन्द्र कायस्थ का भजन 'हरि गुण गाणा' सद्विचारों के लिये श्रोताओं ने पसन्द किया । उन्होंने कहा—

सुख दुख सारे जीवन साथी,
जीयां दीये कन्ने बाती,
खरा कम्म कमाणा ।
हरि गुण गाणा ।

श्रीमति शशिप्रभा 'अंशु' की कविता 'कैहं होइया बीतियां गल्लां अज दिले जो लाइयां हथकड़ियां' सुन्दर रचना थी–

> हर संझ छडदी थी फुल झड़ियां
> नैणा दे दिए बला दे थे,
> हर भ्याग लेई ने औन्दी थी
> हासेयां—खुशियां दी खिड़खिड़ियां।

निस्संन्देह यह कविता की सुन्दर रात्रि थी।

× × ×

अकादमी के तत्वाधान में दिनांक 16 फरवरी, 1975 को हिमाचल साहित्य संगम, नाहन के वार्षिकोत्सव के अवसर पर एक पुस्तक–प्रदर्शनी तथा कवि-सम्मेलन का आयोजन किया गया। कवि-सम्मेलन में स्थानीय तथा प्रदेश के अन्य अनेक स्थानों के कवियों ने भाग लिया।

10 मई, 1975 को परवाणु में अकादमी की विशेषज्ञ उपसमिति की प्रथम बैठक का सभापतित्व श्री लालचन्द प्रार्थी, भाषा तथा संस्कृति मन्त्री, हि0 प्र0 सरकार एवं अध्यक्ष अकादमी ने किया। इस बैठक में केन्द्रीय भाषा संस्थान, मैसूर के निदेशक डा0 डी0 पी0 पटनायक भी उपस्थित थे। बैठक में पहाड़ी भाषा तथा उसके समाज-शास्त्रीय पक्ष के सम्बन्ध में विचार-विमर्श हुआ तथा डा0 पटनायक ने जानकारी दी कि केन्द्रीय संस्थान भी पहाड़ी भाषा के विकास की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है और अगले 6 मास में एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट प्रकाशित कर रहा है। भाषा तथा संस्कृति के व्यवस्थित सर्वेक्षण के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण निर्णय लिए गए।

13 जून, 1975 को अकादमी द्वारा कालीबाड़ी हाल में रवीन्द्र भारती विश्व-विद्यालय के प्राध्यापक तथा प्रसिद्ध शास्त्रीय संगीतज्ञ श्री चिन्मय लहरी 'सुर सागर' की शास्त्रीय संगीत सभा का आयोजन किया गया। शास्त्रीय संगीत पर अकादमी का यह नया पग रहा।

19 जून को काली बाड़ीहाल की दर्शक–दीर्घा दर्शकों तथा श्रोताओं से अभूतपूर्व रूप से भरी थी। इस दिन अकादमी के तत्वाधान में 'नेशनल स्कूल आफ ड्रामा, नई दिल्ली' के छात्रों द्वारा गुजराती लोक नाट्य 'जसमा ओडन' का रंगमंचन किया गया। नाटक की भूरि-भूरी प्रशंसा रही। इस नाटक को प्रदेश के अन्य नगरों यथा सोलन, नाहन, तथा कुल्लु में भी सफलता पूर्वक अकादमी द्वारा मंचायित करवाया गया। अन्य प्रदेशों की संस्कृति व कला से प्रदेशवासियों को अवगत कराने की दिशा में अकादमी का यह पग सर्वत्र सराहा गया। इन आयोजनों के अतिरिक्त अकादमी द्वारा वर्ष 1974-75 में प्रदेश की पंजीकृत संस्थाओं तथा संस्कृति के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली संस्थाओं को विशेषायोजनों के लिए अनुदान दिया गया है।

अकादमी के प्रकाशन–

रामचरित मानस चतु:शती के अवसर पर गत वर्ष अकादमी ने प्रदेश के जन-पदों में प्रचलित राम-कथा के स्वरूपों पर एक पुस्तक 'पहाड़ी लोक रामायण' का प्रकाशन किया। पुस्तक का प्रबुद्ध वर्ग में स्वागत हुआ है। पुस्तक का मूल्य केवल 12/- है जो लागतमात्र के आधार पर रखा गया है। अकादमी पर्वतीय जन-जीवन, संस्कृति तथा कलाओं पर एक त्रैमासिक शोध-पत्रिका का प्रकाशन भी करती है। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई, तथा अक्तूबर में प्रकाशित होती है। इसका वार्षिक चन्दा मात्र 12/- है। इसके अतिरिक्त 'भास के नाटकों–का पहाड़ी भाषा में अनुवाद' पुस्तक प्रकाशनाधीन है तथा कुछ अन्य पुस्तकों की प्रैस–कापियां तैयार हो चुकी हैं।

छात्रवृत्तियां –

अकादमी गत वर्ष से नेशनल स्कूल आफ ड्रामा, नई दिल्ली में दो छात्रवृत्तियां दे रही है तथा पहाड़ी भाषा, चित्रकला तथा फिल्म के क्षेत्र में भी छात्रवृत्तियां देने का प्रावधान है।

इसके अतिरिक्त अकादमी द्वारा अन्य कितनी ही योजनायें आरम्भ की गई हैं जिनका प्रदेश की संस्कृति के साथ महत्वपूर्ण सम्बन्ध है। 'हिमाचल प्रदेश की ललित कलाएं' 'हिमाचल प्रदेश की आदिम जातियां : इतिहास तथा परम्परायें', 'हिमाचल के लोकगीत,' 'हिमाचल की लोक कथायें' आदि पुस्तकों का प्रकाशन तथा सामग्री-संकलन इसी दिशा की एक कड़ी है।

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी के अधिशासी निकाय तथा सामान्य परिषद की क्रमशः 7 तथा 8 जुलाई 1975 को हुई बैठकों का सभापतित्व अकादमी के अध्यक्ष श्री लालचन्द प्रार्थी, भाषा एवं संस्कृति मन्त्री, हि0 प्र0 ने किया। इन बैठकों में अनेक महत्वपूर्ण निर्णय लिए गए। इन में से कुछ निम्नलिखित हैं —

1. पहाड़ी भाषा-साहित्य की प्रमाण-पत्र प्रवेशिका परीक्षा की संस्थापना तथा संचालन।
2. हिमाचल के सांस्कृतिक इतिहास पर एक पुस्तक का प्रकाशन।
3. अकादमी द्वारा मान्यता-प्राप्त स्वैच्छिक सांस्कृतिक तथा कला सम्बन्धी संस्थाओं का सहयोग प्राप्त करना।
4. प्रदेश के लोकनाट्यों पर प्रशिक्षण शिविर लगाना।
5. हिमाचली लेखकों द्वारा रचित साहित्य को प्रदेश के पुस्तकालयों में 'पहाड़ी कक्ष' के अन्तर्गत खरीद करवाना।

tharahkardu.in

6. वर्ष 1975-76 म पहाड़ी लेखकों द्वारा लिखित 13 हस्तलेखों के प्रकाशनार्थ 5800/- का सहायतानुदान दिया जाना।

7. 'इन्दुकाव्यम्' तथा 'पितृधना रा खजाना' हस्तलेखों का अकादमी द्वारा प्रकाशन ।

पहाड़ी भाषा के क्षेत्र में शोध-कार्य को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से 300/- प्रतिमास की दो छात्रवृत्तियां तथा नाट्क, फिल्म तथा चित्रकला के क्षेत्र में प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले हिमाचली छात्रों को 250/- की एक एक छात्रवृत्ति भी स्वीकृत की गई ।

यह निर्णय लिया गया कि लेखक संगोष्ठियों को अधिक प्रोत्साहन दिया जाए ।

अधिशासी निकाय की बैठक ने सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव यह भी पारित किया कि हिमाचल की स्थानीय स्वाभाविक भाषा पहाड़ी है जो हिन्दी, डोगरी अथवा पंजाबी भाषा से भिन्न है अतः सरकार से अनुरोध किया जाए कि वह हिमाचल प्रदेश को केन्द्र सरकार से वे सुविधाएं प्रदान कराने की दिशा में पग उठाए जो अहिन्दी भाषी क्षेत्रों को उपलब्ध हैं ।

इस अवसर पर यह भी निर्णय हुआ कि भाषा- विभाग द्वारा पहाड़ी भाषा में बालोपयोगी त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित की जाए ।

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी का उद्‌घाटन 2 अक्तूबर, 1975 को हुआ था । गत वर्षों में अकादमी द्वारा प्रदेश की कला, संस्कृति तथा भाषा के परिवर्द्धन तथा संरक्षण हेतु अनेक उपयोगी योजनायें आरम्भ की गई हैं । जिनमें से मुख्य इस प्रकार हैं —

1. पहाड़ी लेखकों को प्रकाशनार्थ सहायतानुदान– इस योजना के अन्तर्गत पहाड़ी लेखकों को संस्कृति, कला तथा भाषा पर हिन्दी, पहाड़ी संस्कृत तथा उर्दू में लिखित हस्तलेखों पर प्रकाशनार्थ सहायतानुदान दिया जाता है। इस दिशा में वर्ष 1973-74 में 4200/- वर्ष 1974-75 में 10300/- तथा वर्ष 1975-76 में 5800/- की राशि स्वीकृत हुई । प्रकाशनार्थ सहायतानुदान से अब तक आठ पुस्तकें प्रकाश में आई हैं और अन्य कुछ छप रही है ।

2. संस्कृति, कला तथा भाषा के क्षेत्र में कार्यरत संस्थाओं को सहायतानुदान —

प्रदेश में नाटकों के प्रोत्साहन हेतु इस योजना के अन्तर्गत अनुदान देने की व्यवस्था है ।

पहाड़ी भाषा–पुस्तक-सूची

हिमाचल प्रदेश की स्थानीय अर्थात् प्रादेशिक भाषा पहाड़ी है । इसे 'हिमाचली' भाषा भी नाम दिया गया है । पहाड़ी–भाषी–जनता समूचे भारत के राष्ट्रीय हित से इतनी अधिक ओतप्रोत रही है कि उसने अपनी सांस्कृतिक परम्परा में राष्ट्रभाषा हिन्दी को अत्यन्त प्रिय स्थान दिया हुआ है । प्रजातन्त्र विकासों के वातावरण में पहाड़ी भाषा का विकास और उसका साहित्यिक रूप उजागर होकर अब सामने आने लगा है । यह उत्थान राष्ट्रभाषा हिन्दी के सम्मान और स्थिति को बरकरार रखते हुए, उसे तनिक भी क्षति न पहुंचाते हुए है । देवनागरी लिपि में पहाड़ी भाषा के साहित्य का मर्यादित रूप रूपायित होना जहां इस प्रदेश की प्रजा के सांस्कृतिक विकास के निमित्त है वहां भारत की समूची धरोहर में भी वृद्धि है । पहाड़ी भाषा में रचित पुस्तकें जितनी हमारी जानकारी में आई हैं उनकी सूची हम सर्वसाधारण की सूचना के लिए यहां देते हैं ।

—सम्पादक

क्रमांक	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	पुस्तक का संक्षिप्त परिचय
1.	मेरा देश म्हाचल	डॉ0 पीयूष गुलेरी	अप्रैल, सन् 1969 में छपी यह पुस्तक लेखक की पहाड़ी कविताओं की संचयिका है । पुस्तक के प्रथम संस्करण का मूल्य रु0 3.50 है। जून 1970 में इसका दूसरा संस्करण भी छपा है ।
2.	चंगेर फुल्लांरी	राज्य भाषा संस्थान हि0 प्र0 शिक्षा विभाग।	सन् 1971 में प्रकाशित इस पुस्तक में दस निबन्धों का संकलन है । सम्भवतः यह पहाड़ी निबन्धों की प्रथम पुस्तक है ।
3.	प्रेखण	"	सन् 1971 में प्रकाशित इस पुस्तक में नौ एकांकियों का संग्रह है । सम्भवतः पहाड़ी नाटकों का यह प्रथम प्रकाशित संग्रह है ।

क्रमांक	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	पुस्तक का संक्षिप्त परिचय
4.	काव्य धारा भाग एक	राज्य भाषा संस्थान हि0प्र0 शिक्षा विभाग।	सन् 1971 में प्रकाशित इस पुस्तक में 45 कवियों की 72 पहाड़ी कविताएं है ।
5.	पब्बर की लहरें	रोशन लाल चौहान, गांव चिलाला, तहसील रोहड़ू, जिला शिमला ।	जुलाई 1969 गुरू पूर्णिमा 2026 में साधु-आश्रम होशियार-पुर से प्रकाशित यह पुस्तक उपरि-महासु के सुष्ठु गद्य का अच्छा उदाहरण है । पुस्तक के 80 पृष्ठ गद्य में हैं और 36 पद्य में । विषय सुधा-रात्मक है ।
6.	चेते	श्री गौतम व्यथित राजकीय शिक्षा कालिज, धर्मशाला।	नवम्बर 1969 में विजय पुस्तक भण्डार, पालमपुर से प्रकाशित पुस्तक लेखक की स्वरचित पहाड़ी कविताओं का संकलन है। 150 पृष्ठों की इस पुस्तक का मूल्य 3 रुपये है ।
7.	धारा दियां धूप्पां	श्री शेष अवस्थी, बैजनाथ कांगड़ा ।	सन् 1971 में कुमार सन्ज़ सोलन से प्रकाशित । लेखक की स्वरचित पहाड़ी कविताओं का संकलन है । मूल्य चार रुपए ।
8.	हिमाचली लोक लहरी	श्री शिवशरण सिंह ठाकुर	सन् 1971 में प्रकाशित पुस्तक में हिमाचल प्रदेश के लोकगीतों की स्वर लहरी संगीत-शास्त्र के अनुसार स्वर-लिपि में दी गई है । पुस्तक का मूल्य 12 रु0 50 पैसे है ।
9.	गीतां री सीर	श्री कान्त प्रत्यूष राजकीय हाईस्कूल हरिपुर, कांगड़ा।	सन् 1971 में सुमन प्रिंटिंग प्रैस कांगड़ा से मुद्रित । लेखक की पहाड़ी कविताओं का संकलन है पुस्तक का मूल्य 3/- रुपए है ।
10.	बरासा रे फुल्ल	राज्य भाषा संस्थान शिक्षा विभाग, हिमाचल प्रदेश शिमला ।	सन् 1972 में प्रकाशित यह पुस्तक नौ पहाड़ी भाषा की कहानियों का संग्रह है इसमें हिमाचल प्रदेश के नौं प्रसिद्ध कहानीकारों की कहानियों का संकलन है । सम्भवतः पहाड़ी भाषा की कहानियों की यह प्रथम संचयिता है ।
11.	सदियां रे मोड़	श्री मनसा राम शर्मा 'अरुण' राज्य शिक्षा संस्थान, सोलन।	सन् 1975 में प्रकाशित पहाड़ी भाषा का प्रथम खण्ड काव्य है ।
12.	कूंजां दी कूक	श्री ऋखी भारद्वाज	सन् 1972 में प्रकाशित लेखक की स्वरचित कविताओं का संकलन। मूल्य 3 रु0 30 पैसे।
13.	रींगदी पीड़	श्री कुलभूषण कायस्थ	1972 में प्रकाशित लेखक की स्वरचित पहाड़ी कहानियों का संकलन । मूल्य 4 रु0 50 पैसे ।
14.	मेरा छैल हिमाचल	श्री भगत राम मुसाफिर भारत सरकार प्रिंटिंग प्रैस, टूटी कण्डी, शिमला ।	1972 में प्रकाशित लेखक का स्वरचित पहाड़ी कविताओं का संकलन मूल्य.....।
15.	पहाड़ी दुर्गा सप्तशती	श्री शारदा पंजकर्ण	1973 में प्रकाशित इस पुस्तक का गद्य रूप में अनुवाद पहाड़ी के अनुवाद क्षेत्र में सफल प्रयास है । पुस्तक का मूल्य केवल 1 रुपए 50 पैसे है ।
16.	स्पिति वादी के लोक-गीत	श्री बंशी राम शर्मा	1973 में प्रकाशित इस पुस्तक में लाहौल-स्पिती जिले के लोक-गीत दिए गए हैं । आरम्भ में गीत का परिचय होने के कारण इन गीतों को समझना

1975

क्रमांक	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	पुस्तक का संक्षिप्त परिचय
			बहुत सरल है। पुस्तक का मूल्य 1.75 पैसे है।
17.	कांगड़ी लोकगीत	डा० गौतम व्यथित	1973 में प्रकाशित इस पुस्तक में कुल 120 लोकगीत हैं। पुस्तक की मुख्य विशेषता लोकगीतों की हिन्दी में व्याख्या है। पुस्तक का मूल्य पांच रुपए है।
18.	पात्वरो रे माहणु	श्री जय देव किरण	1973 में प्रकाशित इस पुस्तक में कुल मिलाकर 58 कविताएं हैं जिन में 6 गीत और मुक्तक व गज़लें शामिल हैं। पुस्तक का मूल्य 2 रु० 45 पैसे है।
19.	काव्य धारा (भाग-2)	भाषा एवं संस्कृति प्रकरण विभाग शिमला।	इसमें कुल 93 कविताएं हैं जिनमें हिमाचल की सभी उपभाषाओं की कविताएं सम्मिलित की गई हैं। यह पुस्तक 1974 में प्रकाशित हुई है।
20.	आस परदेसियां दी	श्री रूपशर्मा 'निर्दोष'	1974 में प्रकाशित इस पुस्तक में कुल 29 कविताएं हैं जिसमें देश प्रेम, विरह और प्रेम की कविताएं सम्मिलित हैं। पुस्तक का मूल्य 5 रु० है।
21.	लाल चादरुए री किंगरी	श्री देवराज शर्मा	इस पुस्तक में नौं कथाएं सम्मिलित हैं। पहाड़ी लघु कहानियों का यह सफल संग्रह है। पुस्तक का मूल्य दो रुपए है।
22.	गुगा जाहरपीर	श्री देवराज शर्मा	हिमाचल प्रदेश के विभिन्न स्थानों पर गाई जाने वाली

क्रमांक	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	पुस्तक का संक्षिप्त परिचय
			सुप्रसिद्ध लोकगाथा गुगा जाहरपीर का सुष्ठु संकलन है। पुस्तक का मूल्य 5 रुपए 50 पैसे है।
23.	पहाड़ी लोकरामायाण	हि० कला-संस्कृति भाषा अकादमी, परिमहल, शिमला-9। मुख्य सम्पादक—लाल चन्द प्रार्थी।	प्रकाशन वर्ष 1974 प्रदेश के जनपदों में प्रचलित राम-कथा के स्वरूपों पर आधारित ग्रन्थ है। मू० 12/-
24.	माहणू शिखरां रे	रूप शर्मा	हिमाचल की संस्कृति से सम्बद्ध एक काल्पनिक कथा—उपन्यास मूल्य—10 रुपये, प्रकाशन वर्ष 1974।
25.	स्हेड़यो फुल्ल	शेष अवस्थी	कांगड़ा क्षेत्र की लोक-कथाओं का संकलन प्रकाशन वर्ष 1974, मू० 6/-
26.	कांगड़े दी संस्कृति कनें लोक-जीवन।	खुशीराम शास्त्री	ऊना, हमीरपुर व कांगड़ा क्षेत्र की संस्कृति व जन-जीवन प्रकाशन वर्ष 1974, मू० 12/-
27.	कांगड़े दियां लोक-कथां	खुशीराम शास्त्री	कांगड़ा जनपद की लोक-कथाओं का संकलन, प्रकाशन वर्ष 1975 मू० . . . . .
28.	घाटियां री गूंजां	देवराज शर्मा	हिमाचली लोककथाएं विशेष रूप से बिलासपुर व मण्डी क्षेत्र की लोक-कथाओं का संकलन, प्रकाशन वर्ष 1975, मू० . . . .
29.	रंग बरंगे फुल्ल	नरेन्द्र 'अरुण'	महासुई उपभाषा में कविता-संग्रह। प्रकाशन वर्ष 1974, मू० 15-मात्र

संकलन कर्ता
—विद्या शर्मा

प्रस्तुत सूची अनन्तिम है। पाठकों, लेखकों व प्रकाशकों से निवेदन है कि वे अन्य पुस्तकों के सम्बन्ध में जानकारी रखते हों तो उनके विवरण प्रकाशनार्थ अकादमी कार्यालय को भेज कर कृतार्थ करें।

—सम्पादक

tharahkardu.in

पश्चिमी पहाड़ी का परम्परागत क्षेत्र

पुराने गणराज्य सांस्कृतिक क्षेत्र होते थे, केवलमात्र प्रशासनिक इकाई नहीं। 'बैकुण्ठ के बेटे' की प्रसन्नता जितने क्षेत्र के विद्रोहियों, अयोग्यों, असभ्यों को सहन कर लेती थी, उतने क्षेत्र का वह चक्रवर्ती समझा जाता था। अपने कुल के लायक क्षेत्र चक्रवर्ती अपने प्रत्यक्ष शासन में रख लेता था और चारों ओर छोटे और कम विकसित राणों-राजाओं को शासन करने की छूट दे देता था। भाव-भाषा, संस्कृति-सभ्यता, कला-साहित्य में वे छोटे शासक और उनकी जनता उस बड़े चक्रवर्ती और उसकी प्रजा का अनुसरण-अनुकरण करती थी और होते होते वह सांस्कृतिक क्षेत्र उत्पन्न होकर दृढ़ होता था जो कोरे प्रशासनिक युनिट की अपेक्षा सहस्रधा अधिक स्थायी होता था। छठी-सातवीं शताब्दी में पंजाब-हिमाचल में एक ऐसा सांस्कृतिक राज्य था—ब्रह्मपुर। चीनी यात्री हूणशांग उसका डायमीटर चार हज़ार अर्थात् लगभग छै सौ मील बताता है। विदेशी यात्री चीनी दृष्टिकोण से राज्यों को सांस्कृतिक-क्षेत्र समझने का अभ्यस्त था और कुछ अतिशयोक्ति भी रही होगी। सातवीं शती का भारतीय विद्वान वराहमिहिर भी ऐसे ब्रह्मपुर राज्य का उल्लेख करता है परन्तु उसके अनुसार वह राज्य इतना बड़ा नहीं था। आधुनिक विद्वान सुनीलचन्द राय भी हूणशांग के ब्रह्मपुर राज्य के डायमीटर में अतिशयोक्ति देखते थे। हरमन गोयज़ का मत है कि ब्रह्मपुर राज्य ढाई-तीन सौ मील लम्बा अवश्य रहा होगा और उसका क्षेत्र कुमाऊं की पश्चिमी पहाड़ियों से लेकर पश्चिम में बनिहाल-पास तक विस्तृत था अर्थात् पूर्व में मसूरी से कुछ मील पश्चिम से आरम्भ होकर पश्चिम में चन्द्रभागा (चनाव) पर स्थित भद्रवाह (जम्मू-काश्मीर) तक यही क्षेत्र पश्चिमी पहाड़ी का क्षत्र है और यह सांस्कृतिक परिक्षेत्र के रूप में डेढ़ हज़ार साल से परिपक्व होता आ रहा है। छटी शताब्दी में ब्रह्मपुर सांस्कृतिक राज्य स्थापित होकर बाद में वह थानेश्वर का अधीनस्थ बन गया था। काश्मीर के ललितादित्य मुक्तपीड़ ने कनौज के यशोवर्मन को तीन साल के युद्ध के बाद 733 ई० में पराजित किया और तब कनौज कश्मीर का अधीनस्थ बन कर पूर्वी-पंजाब तक 770 ई० तक राज्य करता रहा। उसी बीच 747 ई० में तिब्बत के शासक ने मुक्तपीड़ के क्षेत्रों पर हमला किया था। तिब्बत के सांस्कृतिक प्रभाव को निष्प्रभ करने के लिए मुक्तपीड़ ने कनौज से अभिजात्य ब्राह्मण-क्षत्रिय लाकर भरमौर में बसा दिए। ब्रह्मपुर राज्य की पहली राजधानी तालेश्वर थी और बाद की दूसरी राजधानी भरमौर (चम्बा) थी। इस दूसरी राजधानी का प्रवर्तक था– मेरुवर्मन जो कि तालेश्वर के सोमवंशी ब्रह्मपुर राजाओं के अधीनस्थ (वैसेल) शुलिक वंश की एक कलम से उत्पन्न था। इसी मेरुवर्मन के एक दूरस्थ वंशज साहिल वर्मन ने, जो कि कनौज के प्रतिहारों का फ्रंटियर जरनैल और राज्यपाल था, चम्बा राज्य की स्थापना की। काश्मीर और कनौज के उन दिनों के आपसी सम्बन्धों ने कांगड़ा

को अधिक और कुल्लू को कम प्रभावित किया। जो युद्धशील कबीले कनौज के शास्त्रपंथी हिन्दु-धर्म को पूरी तरह नहीं मानते थे, कनौज ब्राह्मणों ने उन सबको एक सांझी, सामान्य और व्यापक नाम 'गुर्जर' दिया। कनौजी किस्म की नागर-सभ्यता के मुकाबले में देहातों और जंगलों में रहने वाले और परस्पर या चक्रवर्ती के साथ लड़ने वाले सब कबीलों के लिए ऐसे नाम का एक सांस्कृतिक महत्त्व था। जब भारतीय भाषाएं संस्कृत-प्राकृत से हट कर अपना देशी रूप निखार रही थी तो पश्चिमी पहाड़ी भाषा क्षेत्र में गुर्जर शुलिक-योद्धा प्रमुख थे। सन् 756 में सिक्यांग में मध्य-एशिया में विजयों के लिए गया ललितादित्य तिब्बतियों के हाथों मारा गया, तब ब्रह्मपुर राज्य को खतरा हुआ। भरमौर का ब्रह्मपुरी राजा लक्ष्मीवर्मा तिब्बतियों के हाथों कत्ल हुआ। रानी भागकर कांगड़ा आई फिर सुकेत पहुंची। कुमाऊं अलग हो गया, कुल्लू छिन गया। कांगड़ा और सुकेत स्वतंत्र हो गए फलतः ब्रहमपुर राज्य बिखर गया। इस बिखराहट ने गुर्जर-शुलिक सांस्कृतिक राज्य की पश्चिमी पहाड़ी भाषा को अपना रूप निखारने और स्थिर करने के नैसर्गिक कार्य को पूरा करने में रुकावट डाली। हमारा क्षेत्र बहुत समय तक बोलियों का क्षेत्र बना रह गया। भरमौरी गद्दियों ने बाद में अपनी पुराने गौरव की याद में कई बार कुल्लू पर आक्रमण किए लेकिन नाकाम रहते रहे। छटी-आठवीं शताब्दी के ब्रह्मपुरी सांस्कृतिक राज्य का लगभग पचानवे प्रतिशत क्षेत्र 'हिमाचल' के रूप में उभरा है। जिस सीमा तक यह प्रशासनिक युनिट सांस्कृतिक क्षेत्र बनकर उभर सकेगा उस सीमा तक यह भारतीय-संस्कृति का एक मज़बूत सीमावर्ती स्तम्भ रहेगा।

—एच० सी० पराशर,
प्रबन्ध सम्पादक

लोकोक्ति-साहित्य प्रकृति के ज्ञान की भांति सार्वभौम है। न उसका कोई कर्ता है, न उसका देश-काल से उतना घनिष्ट सम्बन्ध है जितना अन्य साधारण साहित्य का होता है। सदा बहने वाले वायु और सूर्य के प्रकाश के समान लोकोक्तियां मानव-मात्र की सम्पत्ति हैं और उनके रस का स्रोत सब के लिए खुला रहता है।

—डा० वासुदेव शरण अग्रवाल

Copy of letter No. 8-53/70-*Apptt. Dated* 10-12-1974 *from the Joint Secretary (Personnel) to the Government of Himachal Pradesh addressed to all the Secretaries, all the Heads of Departments in Himachal Pradesh and all Deputy Commissioners in Himachal Pradesh and copies endorsed to others.*

Subject:—Grant of special casual leave to Government servants for participation in poetical symposium organised by the H. P. Academy of Arts and Culture Affairs.

In continuation of this Department letter No. 8-53/70-Addtt. dated 5th April, 1971, *vide* which the Government servants were allowed the concession of special casual leave for particicipation in poetical symposium organised by the Language Department of this Government, I am directed to say that it has been decided by the Government that the Government servants who participate in the poetical symposium organised by the H. P. Academy of Arts, Culture may also be sanctioned special casual leave for such participation on the following conditions:—

(*a*) The Government servant has been formally invited to attend the poetical symposium organised by the H. P. Academy of Arts and Culture and the concession will not be admissible for the poetical symposium organised by any other agency;

(*b*) Special casual leave will be admissible only for the day(s) on which poetical symposium is to take place and for the time required for undertaking the journey to and from the place at which such symposium is held. The total duration of special casual leave should not exceed 30 days in any calendar year. No casual leave will be admissible in cases where the poetical symposium is being held at the place of posting of the Government servant provided the symposium is to be held beyond the normal working hours;

(*c*) The special casual leave will be sanctioned by the authorities which are competent to sanction the casual leave to the Government servant concerned and the same extent they are competent to sanction casual leave;

(*d*) No travelling allowance or daily allowance will be admissible to the Government servant for taking part in the poetical symposium; and

(*e*) The Government servant can be allowed to combine special casual leave with regular leave as a special case but not with ordinary casual leave, special leave for this purpose can also be combined with other type of special casual leave admissible under the other orders of the Government.

These instructions may also be brought to the notice to all the Government servants for their information and kindly be observed in future.

P&SHPS—1274 A.C.L./75-8-8-75—500.

H.A.A.C.L.

आर0 एन0 28271/75

निदेशक, शिक्षा विभाग हि0 प्र0 द्वारा पत्राङ्क ईडीऐन–एच(8)–6(3) 1/75, दिनांक 24 फरवरी, 1975 के अनुसार प्रवेश के समस्त कालेजों, पाठशालाओं व जिला पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत।

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी, परिमहल, शिमला-9 द्वारा प्रसारित तथा उप नियन्त्रक, मुद्रण तथा लेखन सामग्री, हिमाचल प्रदेश, शिमला-3 द्वारा मुद्रित।

tharahkardu.in